वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 396
ISBN-978-93-82071-81-5

जैन मुनि दीक्षा विधि

–संकलनकर्त्री –

दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत,
गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि, दिव्य शक्ति
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा-18 अक्टूबर 2013, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के अमृत महोत्सव वर्ष के अन्तर्गत स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्तिस्वामी जी पीठाधीश पदारोहण प्रतिष्ठापना दिवस (मगशिर कृ. 10) के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.ए फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	मगशिर कृ. दशमी, 27 नवम्बर 2013	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

- कम्पोजिंग -
ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी पीठाधीश
स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

भगवान महावीर स्वामी के पश्चात् गौतम गणधर के द्वारा कथित एवं आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किए गए ग्रंथों में मुनियों के आचार संबंधी अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें मूलाचार, आचारसार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत आदि ग्रंथ प्रमुख हैं। इन समस्त ग्रंथों में मुनियों के 28 मूलगुण माने गए हैं तथा इन मूलगुणों के संबंध में इन ग्रंथों में विस्तार से लिखा गया है।

इन्हीं ग्रंथों के आधार से ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने ''मुनि दीक्षा विधि'' नामक इस महत्त्वपूर्ण कृति में दीक्षाविधि का विस्तृत वर्णन किया है। इस शताब्दी के प्रथम प्रभावक जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज और उनके पश्चात् इस परम्परा के समस्त आचार्यों का सान्निध्य पूज्य माताजी ने प्राप्त किया है तथा उनकी क्रियाओं को भी देखा और समझा है, इसके अतिरिक्त अपने 61 वर्षीय दीक्षित जीवन में पूज्य माताजी ने अनेक ग्रंथों का बारीकी से अध्ययन और अध्यापन भी किया है अतएव आगम की विधिपूर्वक मुनि-आर्यिका-क्षुल्लक-क्षुल्लिका की दीक्षा विधि को निबद्ध करने में उन्होंने अथक परिश्रम किया है। आशा है साधुवर्ग में यह कृति आगम के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

भगवान महावीर की परम्परा के दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द एवं परवर्ती समस्त आचार्यों की तरह वर्तमान के साधुगण उसी आगम विधि से अपने शिष्य-शिष्याओं को दीक्षित करें और वे साधुगण क्रम-क्रम से जिनधर्म की प्रभावना करते हुए कर्मों का क्षय करके शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करें, यही मेरी मंगल कामना है।

प्रस्तावना

(पहले इसे अवश्य पढ़ें)

–आर्यिका चन्दनामती

दिगम्बर जैन मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका की दीक्षा विधि का ज्ञान कराने वाली यह पुस्तक समय की मांग के अनुसार तैयार की गई है। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी सबसे प्राचीन दीक्षित आर्यिका परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा मूलाचार, अनगार धर्मामृत, आचारसार, क्रियाकलाप आदि से संकलित दीक्षा की प्रामाणिक विधि इसमें दी गई है।

इस ''जैन मुनि दीक्षा विधि'' नामक पुस्तक का शुभारंभ पूज्य माताजी ने स्वरचित ''श्री त्रैलोक्यगुरुं नत्वा''.....इत्यादि पाँच श्लोकों के मंगलाचरण से करके ग्रंथ में प्रथम ''दीक्षार्थी और दीक्षा'' के महत्व को श्री कुन्दकुन्दाचार्य के शब्दों में प्रगट किया है। पुनः दीक्षा के नक्षत्र ''क्रियाकलाप'' (पं. पन्नालाल जी सोनी द्वारा संकलित) से देकर उनका हिन्दी में खुलासा कर दिया है कि किन-किन नक्षत्रों में किनको दीक्षा प्रदान करना चाहिए।

पुनः महापुराण (श्री जिनसेनाचार्य प्रणीत) के आधार से दीक्षा के योग्य मुहूर्त बताये हैं कि किस प्रकार के शुभ योग (तिथि-नक्षत्र-ग्रह-लग्न) में दीक्षा देना चाहिए, क्योंकि अशुभ योगों में दी गई दीक्षा फलीभूत नहीं होती है। इसके साथ ही पुस्तक में ''दीक्षा के पात्र कौन होते हैं ?, दीक्षा की विधि में क्या-क्या पढ़ते हैं ?.....'' इत्यादि का विस्तार से वर्णन करके पिच्छी-शास्त्र-कमण्डलु आदि देने एवं दीक्षित का नामकरण करने तक की पूरी विधि क्रमपूर्वक प्रस्तुत की गई है। उसी संदर्भ में यहाँ कुछ विशेष ज्ञातव्य बिन्दुओं की ओर पाठकों का ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है–

(1) क्रियाकलाप में प्रकाशित दीक्षा विधि ज्यों की त्यों (पृ. 10 से 12 तक) देकर उसकी प्रयोग विधि (पृ. 13 से 39 तक) पूज्य माताजी ने यथास्थान हिन्दी में अनुवाद करके प्रस्तुत कर दिया है। दीक्षा के पूर्व में प्रत्याख्यान/उपवासादि ग्रहण के समय पढ़ी जाने वाली सभी भक्तियों का हिन्दी पद्यानुवाद दिया है। वहाँ यदि संस्कृत भक्तियाँ पढ़नी है, तो पेज नं. 28 से 35 तक पढ़ सकते हैं तथा दीक्षा के समय की प्रयोग विधि में संस्कृत भक्तियों को यथास्थान जोड़ा है ताकि कहीं इधर-उधर से भक्तियाँ ढूंढ़नी न पड़े।

(2) दीक्षा के पश्चात् अगले दिन आहार से पूर्व की जाने वाली एक महत्वपूर्ण विधि होती है जिसका नाम है–''मुखशुद्धिमुक्तकरणविधिः''। इस विधि को वर्तमान में करने की प्रायः परम्परा नहीं है, किन्तु पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी बताती हैं कि मैंने सन् 1957-58 में पं. पन्नालाल सोनी से चर्चा करके आचार्यश्री शिवसागर महाराज (चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के द्वितीय पट्टाचार्य) के सानिध्य में अपनी शिष्या आर्यिका जिनमती जी, आदिमती जी

आदि को इस पूर्ण ''मुखशुद्धिमुक्तकरणविधि'' करके ही प्रथम पारणा करवाई थी। पुनः वर्तमान में भी उन्होंने हम लोगों को करवाई है।

वह ''मुखशुद्धिमुक्तकरणविधि'' पृ. 40 पर दृष्टव्य है। वहाँ बहुत स्पष्टरूप से कहा है कि तेरह, पाँच या तीन कटोरियों में लवंग-इलाइची-सुपाड़ी आदि सहित गरम जल भरकर, भक्तिपाठ पढ़कर नव दीक्षित को कुल्ला करवाकर हमेशा के लिए उन्हें आचमन आदि विधिपूर्वक कुल्ला करने का त्याग करा दिया जाता है।

दीक्षा देने वाले पूज्य आचार्यों एवं गणिनी आर्यिका माताओं को इस विधि के विषय में सूक्ष्मता से चिन्तन करके इसे दीक्षा विधि के अंगस्वरूप ही मानकर इसका प्रयोग करना चाहिए।

(3) इसी प्रकार दीक्षा के बाद सम्पन्न की जाने वाली एक ''व्रतारोपिणी क्रिया'' (पृ. 42 पर) है। उसमें भी अनगारधर्मामृत के आधार से खुलासा है कि दीक्षा देने के बद उसी पक्ष में अथवा द्वितीय पक्ष में शुभ मुहूर्त देखकर विधिपूर्वक व्रतारोपण करें। इसमें विशेषरूप से पाक्षिक प्रतिक्रमण का पाठ (किंचित् परिवर्तन के साथ, जैसे-''पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रियायां के स्थान पर ''अथव्रतारोपिणीप्रतिक्रमणक्रियायां'' पढ़ा जाता है।

इसे भी आगम विधि के रूप में स्वीकार करके अमल में लाना चाहिए।

(4) आर्यिका दीक्षा विधि (पृ. 44 पर) में सम्पूर्ण संस्कार मुनि दीक्षा विधि के अनुसार ही होते हैं। उन्हें आचार्यश्री शांतिसागर जी, आचार्य श्री वीरसागर जी के कथनानुसार 28 मूलगुण (किंचित् स्पष्टीकरण सहित) प्रदान करके मस्तक पर सोलह संस्कार के मंत्र पढ़ने का निर्देश दिया है। उसी का पालन वर्तमान में भी लगभग सभी आर्यिका संघों में हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक के अन्दर अन्य और भी आवश्यक सामग्री जैसे–दीक्षा के अतिरिक्त समय में किये जाने वाले केशलोंच की क्रिया, आहारचर्या में प्रत्याख्यान छोड़ने और ग्रहण करने का खुलासा, उपाध्याय और आचार्य पद स्थापना की विधि तथा क्षुल्लक दीक्षा विधि देकर विषयों का समापन करते हुए पूज्य माताजी ने अंतिम प्रशस्ति में दिया है कि मैंने वीर निर्वाण संवत् 2539 (ईसवी सन् 2013) में वैशाख कृष्णा द्वितीया (अपनी 58वीं आर्यिका दीक्षा तिथि के दिन) इसका हिन्दी अनुवाद करके पूर्ण किया है।

जैनी दीक्षा प्रदान करने वाले एवं ग्रहण करने वालों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होने वाले श्रावक-श्राविकाओं के दीक्षा का महत्त्व जानना भी परम आवश्यक है।

इस कृति का सदुपयोग ही इसका सच्चा मूल्याकंन है। अतः गृहस्थ श्रावक इसे दिगम्बर जैन सन्तों तक पहुँचाकर अपने कर्तव्य का पालन करें, यही मंगल प्रेरणा है तथा पूज्य गुरुजनों से नम्र निवेदन है कि आगम सम्मत इस कृति को निष्पक्षरूप से आद्योपान्त पढ़कर यदि कोई सुझाव हों, तो हमें सूचित करने की कृपा करें। गुरुचरणों में शत-शत नमन करते हुए दीक्षा के सम्पूर्ण अर्थ को जीवन में साकार करने की अभिलाषा रखती हूँ।

दो शब्द

–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

जैनधर्म के अनुसार संसार, शरीर, भोगों से विरक्त मानव के 28 मूलगुण अथवा ग्यारह प्रतिमारूप सकल संयम या देशसंयम ग्रहण करने का नाम 'दीक्षा' है। दीक्षा की परिभाषा बताते हुए आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है–

मोहतिमिरापहरणे, दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः।।

पूज्य माताजी कई बार दीक्षा शब्द की व्याख्या बताते हुए कहती हैं–

दीयते ज्ञान सद्भावं, क्षीयते पशुभावना।
दानक्षपण भावेन, दीक्षा तेनैव उच्यते।।

अर्थात् दी और क्षा इन दो शब्दों के द्वारा ज्ञान के सद्भाव का आदान-प्रदान एवं पशुत्व भावना का क्षपण होकर ''दीक्षा'' का अर्थ स्पष्ट और सार्थक हो जाता है। इसमें सिर मुंडन केशलोंच के साथ-साथ मन और इन्द्रियों का भी मुण्डन-निग्रह होता है।

दिगम्बर जैन परम्परा में दीक्षार्थी स्त्री-पुरुष के वैराग्य परिणामों की परीक्षा करके गुरू सर्वप्रथम उनका केशलोंच करते हैं पुनः मस्तक पर मूलगुणों के संस्कार आरोपित कर उन्हें पूज्य बनाते हैं। मुनि, आर्यिकाओं के वे 28 मूलगुण श्री गौतम स्वामी ने इस प्रकार बताए हैं–

वदसमिदिंदिय रोधो, लोचो आवासय मचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदन्तवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी की गुरु परम्परानुसार आर्यिकाओं के भी मुनियों के समान ही 28 मूलगुण माने जाते हैं तथा उन्हें मुनियों के समान ही दीक्षा विधि से दीक्षित करके प्रायश्चित्त आदि एक समान प्रदान किया जाता है जबकि क्षुल्लक-क्षुल्लिका की दीक्षाविधि बिल्कुल भिन्न होती है। उसी विधि का शास्त्रोक्त पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रंथानुसार वर्णन करके उत्तर भारत की आध्यात्मिक सूर्य, बीसवीं सदी की प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी परमपूज्या राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने हम पर महान उपकार किया है, जिसके द्वारा साधुगण अपने शिष्यों की आगम के अनुसार दीक्षाविधि सम्पन्न कर सकते हैं। इसमें मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका की दीक्षा विधि के अतिरिक्त आचार्यपदस्थापन विधि, उपाध्याय-पदस्थापन विधि, दीक्षा के योग्य नक्षत्र आदि के विषय में भी बताया गया है।

ऐसी गागर में सागर और राई में पर्वत के समान अमूल्य इस ''मुनिदीक्षा विधि'' पुस्तक के द्वारा आगमोक्त जानकारी प्राप्त कर मुनिजन अपने शिष्य-शिष्याओं को आगम विधि से दीक्षा प्रदान करें और वे दीक्षित साधु जिनधर्म की महती प्रभावना करते हुए एक दिन मुक्तिलक्ष्मी के वरण में सफल हों, यही वीरप्रभू से मंगल प्रार्थना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस तीर्थंकर मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली नई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मुनि दीक्षा विधि (मंगलाचरण)	1
2.	दीक्षार्थी और दीक्षा	2
3.	दीक्षा के नक्षत्र	4
4.	दीक्षा योग्य मुहूर्त	5
6.	जैनेश्वरी दीक्षा के लिए पात्र	6
7.	वृहद्दीक्षाविधि	10
8.	दीक्षा के पूर्व दिन भोजन की विधि	13
9.	दीक्षा के पूर्व मंगल स्नान आदि की विधि	25
10.	दीक्षा के पूर्व मंच पर भगवान का अभिषेक	25
11.	दीक्षा प्रयोग विधि	26
12.	अथ मुखशुद्धिमुक्तकरण विधिः	40
13.	व्रतारोपिणी क्रिया	42
14.	आर्यिका दीक्षा विधि	44
15.	अन्यदातनलोच क्रिया	46
16.	आहारचर्या कब और कैसे ?	47
17.	उपाध्याय दीक्षा विधि	54
18.	अथाचार्यपदस्थापन विधिः	61
19.	क्षुल्लक दीक्षा विधिः	67
20.	प्रशस्ति	72

मुनि दीक्षा विधि

-मंगलाचरण-

श्री त्रैलोक्यगुरुं नत्वा, त्रैलोक्याग्रपदाप्तये।
तीर्थंकरान् गणीन्द्रांश्च, जिनवाणीमपि स्तुमः।।१।।

संप्रति शासनं यस्य, तं वीरस्वामिनं नुमः।
इन्द्रभूतिगणीन्द्राय, नमोऽस्तु सर्वसाधवे।।२।।

षोडशकारणं पर्व, षोडशतीर्थकृज्जिनः।
सद्दृग्विशुद्धिसंप्राप्त्यै, तत्तं च कोटिशो नुमः।।३।।

सम्यग्दीक्षाविधिं प्राप्य, भवेदात्मा जगद्गुरुः।
त्रैलोक्यस्य गुरुर्भूत्वा, त्रैलोक्याग्रेऽवतिष्ठते।।४।।

आर्षात्संकलनं कृत्वा, जैनीदीक्षाविधेः क्रमात्।
महाव्रतस्य दीक्षाप्त्यै, दीक्षाविधिरनूद्यते।।५।।

दीक्षार्थी और दीक्षा

श्री कुंदकुंदस्वामी दुःखों से छुटकारा चाहने वाले पुरुषों को मुनिपद ग्रहण करने की प्रेरणा करते हैं—

एवं पणमिय सिद्धे, जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जद सामण्णं, जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं।।१।।

हे भव्यजीवों! यदि आप लोग दुःखों से छुटकारा चाहते हैं तो इस प्रकार सिद्धों को, जिनवरों में श्रेष्ठ तीर्थंकर अर्हन्तों को और आचार्योपाध्याय सर्व साधुरूप मुनियों को बार-बार प्रणाम कर मुनिपद को प्राप्त करें।।१।।

मुनि होने का इच्छुक पुरुष पहले क्या करे, यह उपदेश देते हैं—

आपिच्छ बंधुवग्गं, विमोइदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसण, चरित्ततववीरियायारं।।२।।
समणं गणिं गुणड्ढं, कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।
समणेहि तं पि पणदो, पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो।।३।।

जो मुनि होना चाहता है वह सर्वप्रथम अपने बंधुवर्ग से पूछकर गुरु, स्त्री तथा पुत्रों से छुटकारा प्राप्त करे फिर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों को प्राप्त हुए ऐसे आचार्य के पास पहुँचे जो कि अनेक गुणों से सहित हों, कुल, रूप तथा अवस्था से विशिष्ट हों और अन्य मुनि जिसे अत्यन्त चाहते हों। उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करता हुआ यह कहे कि हे प्रभो! मुझे अंगीकार कीजिए। अनंतर उनके द्वारा अनुगृहीत होकर निम्नांकित भावना प्रकट करें।।२-३।।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो, जादो जधजादरूवधरो।।४।।

'मैं दूसरों का नहीं हूँ, दूसरे मेरे नहीं हैं और न इस लोक में मेरा कुछ है।' इस प्रकार निश्चित होकर जितेन्द्रिय होता हुआ सद्योजात बालक के समान दिगम्बर रूप को धारण करे।।४।।

आगे सिद्धि के लिए कारणभूत बाह्य लिंग और अंतरंग लिंग इन दो लिंगों का वर्णन करते हैं—

जधजादरूवजादं, उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं।
रहितं हिंसादीदो, अपडिकम्मं हवदि लिंगं।।५।।
मुच्छारंभविजुत्तं, जुत्तं उवजोगजोगसुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं, अपुणब्भवकारणं जोण्हं।।६।।जुगलं।।

जो सद्योजात बालक के समान निर्विकार निर्ग्रंथ रूप के धारण करने से उत्पन्न होता है, जिसमें शिर तथा दाढ़ी-मूँछ के बाल उखाड़ दिये जाते हैं, जो शुद्ध है-निर्विकार है, हिंसादि पापों से रहित है और शरीर की संभाल तथा सजावट से रहित है वह बाह्य लिंग है तथा जो मूर्च्छा-परपदार्थ में ममता परिणाम और आरंभ से रहित है, उपयोग और योग की शुद्धि से सहित है, पर की अपेक्षा से दूर है एवं मोक्ष का कारण है वह श्री जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ अंतरंग लिंग — भावलिंग है।

जैनागम में बहिरंग लिंग और अंतरंग लिंग — दोनों ही लिंग परस्पर सापेक्ष रहकर ही कार्य के साधक बतलाये हैं। अंतरंग लिंग के बिना बहिरंग केवल नट के समान वेष मात्र है, उससे आत्मा का कुछ भी कल्याण साध्य नहीं है और बहिरंग लिंग के बिना अंतरंग लिंग का होना संभव नहीं है क्योंकि जब तक बाह्य परिग्रह का त्याग होकर यथार्थ निर्ग्रंथ अवस्था प्रगट नहीं हो जाती, तब तक मूर्च्छा या आरंभ रूप आभ्यंतर परिग्रह का त्याग नहीं हो सकता और जब तक हिंसादि पापों का भाव तथा शरीरासक्ति का भाव दूर नहीं हो जाता, तब तक उपयोग और योग की शुद्धि नहीं हो सकती। इस प्रकार उक्त दोनों लिंग ही अपुनर्भव — फिर से जन्म धारण नहीं करना अर्थात् मोक्ष के कारण हैं।।५-६।।

आगे श्रमण कौन होता है ? यह कहते हैं —

आदाय तं पि लिंगं, गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता।
सोच्चा सवयं किरियं, उवट्ठिदो होदि सो समणो[१]।।७।।

जो अर्हंत परमेश्वर अथवा दीक्षागुरु से पूर्वोक्त दोनों लिंगों को ग्रहण कर उन्हें नमस्कार करता है और व्रतरहित आचारविधि को सुनकर शुद्ध आत्मस्वरूप में उपस्थित रहता है, अपने उपयोग को अन्य पदार्थों से हटाकर शुद्ध आत्मस्वरूप के चिंतन में लीन रहता है, वह श्रमण होता है।।७।।

१. प्रवचनसार, अधिकार ३, गाथा नं. ७

दीक्षा के नक्षत्र

प्रणम्य शिरसा वीरं जिनेन्द्रममलव्रतम्।
दीक्षा ऋक्षाणि वक्ष्यन्ते सतां शुभफलाप्तये।।१।।

भरण्युत्तरफाल्गुन्यौ मघा-चित्रा-विशाखिकाः।
पूर्वाभाद्रपदा भानि रेवती मुनिदीक्षणे[१]।।२।।

रोहिणी चोत्तराषाढा उत्तराभाद्रपत्तथा।
स्वातिः कृत्तिकया सार्धं वर्ज्यते मुनिदीक्षणे।।३।।

अश्विनी-पूर्वाफाल्गुन्यौ हस्तस्वात्यनुराधिकाः।
मूलं तथोत्तराषाढा श्रवणः शतभिषक्तथा।।४।।

उत्तराभाद्रपच्चापि दशेति विशदाशयाः।
आर्यिकाणां[२] व्रते योग्यान्युशन्ति शुभहेतवः।।५।।

भरण्यां कृत्तिकायां च पुष्ये श्लेषार्द्रयोस्तथा।
पुनर्वसौ च नो दद्युरार्यिकाव्रतमुत्तमाः।।६।।

पूर्वभाद्रपदा मूलं धनिष्ठा च विशाखिका।
श्रवणश्चैषु दीक्ष्यन्ते क्षुल्लकाः[२] शल्यवर्जिताः[३]।।७।।

श्री वीर जिनेन्द्र भगवान को शिर झुकाकर नमस्कार करके एवं अमल — निर्दोष व्रतों को भी नमस्कार करके सज्जनों — साधुओं को शुभ फल की प्राप्ति के लिए दीक्षा के नक्षत्रों को कहूँगा।।१।।

भरणी, उत्तराफाल्गुनी, मघा, चित्रा, विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा और रेवती ये नक्षत्र मुनिदीक्षा के लिए प्रशस्त — शुभ माने हैं।।२।।

रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, स्वाति और कृत्तिका ये नक्षत्र मुनिदीक्षा में वर्जित हैं।।३।।

अश्विनी, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढ़ा, श्रवण और शतभिषज तथा उत्तराभाद्रपदा ये दश नक्षत्र आर्यिका दीक्षा के लिए योग्य — शुभहेतुक हैं।।४-५।।

भरणी, कृत्तिका, पुष्य, आश्लेषा, आर्द्रा और पुनर्वसु इन नक्षत्रों में गुरुगण आर्यिकाव्रत नहीं देवें।।६।।

पूर्वाभाद्रपदा, मूल, धनिष्ठा, विशाखा और श्रवण इन नक्षत्रों में शल्यवर्जित क्षुल्लक दीक्षा देनी चाहिए।।७।।

इस प्रकार दीक्षा नक्षत्र पटल का कथन पूर्ण हुआ।

१. प्रशस्तानीत्यर्थः। २. क्षुल्लिकानामपि। ३. क्रियाकलाप ग्रंथ से

दीक्षा योग्य मुहूर्त

(महापुराण के आधार से)

गार्हस्थ्यमनुपाल्यैवं गृहवासाद् विरज्यतः।
यद्दीक्षाग्रहणं तद्धि पारिव्राज्यं प्रचक्ष्यते।।१५५।।

पारिव्राज्यं परिव्राजो भावो निर्वाणदीक्षणम्।
तत्र निर्ममता वृत्त्या जातरूपस्य धारणाम्।।१५६।।

प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगलग्न ग्रहांशके।
निर्ग्रन्थाचार्यमाश्रित्य दक्षा ग्राह्या मुमुक्षुणा।।१५७।।

विशुद्धकुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मतः।
दीक्षायोग्यत्वमाम्नातं सुमुखस्य सुमेधसः।।१५८।।

ग्रहोपरागग्रहणे परिवेषेन्द्रचापयोः।
वक्रग्रहोदये मेघपटलस्थगितेऽम्बरे।।१५९।।

नष्टाधिमासदिनयोः संक्रान्तौ हानिमत्तिथौ।
दीक्षाविधिं मुमुक्षूणां नेच्छन्ति कृतबुद्धयः।।१६०।।

इस प्रकार गृहस्थधर्म का पालन कर घर के निवास से विरक्त होते हुए पुरुष का जो दीक्षा ग्रहण करना है, उसे पारिव्राज्य कहते हैं।।१५५।।

परिव्राट् का जो निर्वाणदीक्षारूप भाव है उसे पारिव्रज्य कहते हैं, इस पारिव्रज्य क्रिया में ममत्व भाव छोड़कर दिगम्बररूप धारण करना पड़ता है।।१५६।।

मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष को शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ योग, शुभ लग्न और शुभ ग्रहों के अंश में निर्ग्रन्थ आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए।।१५७।।

जिसका कुल और गोत्र विशुद्ध है, चरित्र उत्तम है, मुख सुन्दर है और प्रतिभा अच्छी है, ऐसा पुरुष ही दीक्षा ग्रहण करने के योग्य माना गया है।।१५८।।

जिस दिन ग्रहों का उपराग हो, ग्रहण लगा हो, सूर्य-चन्द्रमा पर परिवेष (मण्डल) हो, इन्द्रधनुष उठा हो, दुष्ट ग्रहों का उदय हो, आकाश मेघपटल से ढका हुआ हो, नष्ट मास अथवा अधिक मास का दिन हो, संक्रान्ति हो अथवा क्षयतिथि का दिन हो, उस दिन बुद्धिमान आचार्य मोक्ष की इच्छा करने वाले भव्यों के लिए दीक्षा की विधि नहीं करना चाहते हैं अर्थात् उस दिन किसी शिष्य को नवीन दीक्षा नहीं देते हैं।।१५९-१६०।।

जैनश्वरी दीक्षा के लिए पात्र

आगम में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों के मनुष्य को ही जैनेश्वरी दीक्षा का आदेश दिया है।

श्री कुन्दकुन्ददेव ने प्रवचनसार में कहा है–

वण्णेसु तीसु एक्को, कल्लाणंगो तवो सहो वयसा।
सुमुहो कुंछारहिदी, लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो।।

गाथार्थ—ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य इन तीन वर्णों में से एक वर्ण वाला आरोग्य शरीरधारी, तपस्या को सहन करने वाला, अवस्था से सुन्दर मुख वाला तथा अपवाद रहित पुरुष साधु भेष के लेने योग्य होता है। (पृ. ५३७)

श्री कुन्दकुन्ददेव ने आचार्यभक्ति में भी कहा है—

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिहमंगलमत्थु मे णिच्चं।।१।।

आप देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, विशुद्ध मन, वचन, काय से संयुक्त हैं। ऐसे हे आचार्यदेव! आपके पादकमल इस लोक में हमारे लिए नित्य ही मंगलस्वरूप होवें।[१]

सज्जातिः सद्गृहस्थत्वं पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परमार्हन्त्यं निर्वाणं चेति सप्तधा।।

१. सज्जाति, २. सद्गृहस्थता (श्रावक के व्रत), ३. पारिव्राज्य (मुनियों के व्रत), ४. सुरेन्द्रपद, ५. साम्राज्य (चक्रवर्ती पद) ६. अरहंतपद और ७. निर्वाणपद ये सात परम स्थान कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव क्रम-क्रम से इन परमस्थानों को प्राप्त कर लेता है।

इन्हें कर्त्रन्वय क्रिया भी कहते हैं। इन सप्तपरमस्थानों का कर्त्रन्वय क्रियाओं के नाम से आदिपुराण[२] में सुन्दर विवेचन देखा जाता है।

।।१।। सज्जाति परमस्थान—

सनृजन्मपरिप्राप्तौ दीक्षायोग्ये सदन्वये।
विशुद्धं लभते जन्म सैषा सज्जातिरिष्यते।।८३।।
पितुरन्वयशुद्धिर्यो तत्कुलं परिभाष्यते।
मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यभिलप्यते।।८५।।
विशुद्धिरूभयस्यास्य सज्जतिरनुवर्णिता।
यत्प्राप्तौ सुलभा बोधिरयत्नोपनतैगुणैः।।८६।।

१. आचार्यभक्ति क्रियाकलाप पृ. २१४। २. आदिपुराण पर्व ३९, पृ. २७७।

इन क्रियाओं में कल्याण करने वाली सबसे पहली क्रिया सज्जाति है जो कि निकट भव्य को मनुष्य जन्म की प्राप्ति होने पर होती है।।" दीक्षा धारण करने योग्य उत्तम वंश में विशुद्ध जन्म धारण करने वाले मनुष्य के सज्जाति नाम का परमस्थान होता है। विशुद्ध कुल और विशुद्ध जातिरूपी संपदा सज्जाति है। इस सज्जाति से ही पुण्यवान् मनुष्य उत्तरोत्तर उत्तम-उत्तम वंशों को प्राप्त होता है। पिता के वंश की जो शुद्धि है उसे कुल कहते हैं और माता के वंश की शुद्धि जाति कहलाती है। कुल और जाति इन दोनों की विशुद्धि को "सज्जाति" कहते हैं, इस सज्जाति के प्राप्त होने पर बिना प्रयत्न के सहज ही प्राप्त हुये गुणों से रत्नत्रय की प्राप्ति सुलभ हो जाती है।[१]

आर्यखंड की विशेषता से सज्जातित्व की प्राप्ति शरीर आदि योग्य सामग्री मिलने पर प्राणियों के अनेक प्रकार के कल्याण उत्पन्न करती है। यह सज्जाति उत्तम शरीर के जन्म से ही वर्णन की गई है क्योंकि पुरुषों के समस्त इष्ट पदार्थों की सिद्धि का मूल कारण यही एक सज्जाति है। संस्कार रूप जन्म से जो सज्जाति का वर्णन है वह दूसरी ही सज्जाति है उसे पाकर भव्य जीव द्विजन्मा कहलाता है अर्थात् प्रथम उत्तम वंश में जन्म यह एक सज्जाति हुई पुनः व्रतों के संस्कार से संस्कारित होना यह द्वितीय जन्म माना जाने से उस भव्य की "द्विज" यह संज्ञा अन्वर्थ हो जाती है। जिस प्रकार विशुद्ध खान में उत्पन्न हुआ रत्न संस्कार के योग से उत्कर्ष को प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रियाओं और मंत्रों से सुसंस्कार को प्राप्त हुआ आत्मा भी अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त हो जाता है।

यहाँ विशेष बात समझने की यह है कि जाति व्यवस्था को माने बिना "सज्जातित्व" नहीं बन सकती। इसी बात को श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं—

जातिगोत्रादिकर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः।
येषु ते स्युस्त्रयो वर्णोः शेषा शूद्राः प्रकीर्तिता।।४९३।।
अच्छेद्यो मुक्तियोग्याया विदेहे जातिसंततेः।
तद्धेतुनामगोत्राद्ययजीवाविच्छिन्नसंभवात्।।४९४।।
शेषयोस्तु चतुर्थे स्यात्काले तज्जातिसंततिः।
एवं वर्णविभागः स्यान्मनुष्येषु जिनागमे।।४९५।।

"जिनमें शुक्लध्यान के लिये कारण ऐसे जाति, गोत्र आदि कर्म पाये जाते हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ऐसे तीन वर्ण हैं। उनसे अतिरिक्त शेष शूद्र कहे जाते हैं। विदेह क्षेत्र में मोक्ष जाने के योग्य जाति का कभी विच्छेद नहीं होता क्योंकि वहीं उस जाति में

१. आदिपुराण पर्व ३९।

कारणभूत नाम और गोत्र से सहित जीवों की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है परन्तु भरत और ऐरावत क्षेत्र में चतुर्थकाल में जाति की परम्परा चलती है। जिनागम में मनुष्यों का वर्ण-विभाग इस प्रकार बतलाया गया है[१]।

कृतयुग की आदि में जब प्रजा भगवान् के सामने अपनी आजीविका की समस्या लेकर आई तब भगवान् ने उसे आश्वासन देकर विचार किया—

पूर्वापरविदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता।
साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमूप्रजाः।।१४३।।
षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णाश्रमस्थितिः।
यथा ग्रामगृहादीनां संस्त्यायाश्च प्रथग्विधाः।।१४४।।

"पूर्व और पश्चिम विदेहक्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है। वहाँ जैसे असि, मसि आदि षटकर्म हैं, जैसी क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीन वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम, घर, नगर आदि की रचना है वह सब यहाँ पर भी होनी चाहिये। अनन्तर भगवान् के स्मरण मात्र से देवों के साथ सौधर्म इंद्र वहाँ आया और उसने शुभ मुहूर्त में जगद्गुरु भगवान् की आज्ञानुसार मांगलिक कार्यपूर्वक अयोध्या के बीच में "जिनमन्दिर" की रचना की एवं चारों दिशाओं में चार जिनमंदिर बनाये। पुनः सर्वप्रथम ग्राम, नगर आदि की रचना कर प्रजा को बसाकर चला गया[२]।

"पुनः भगवान् ने असि, मसि आदि षट् कर्मों का उपदेश देकर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की। उस समय प्रजा अपने वर्ण की निश्चित आजीविका को छोड़कर अन्य आजीविका नहीं करती थी इसलिये उनके कार्यों में कभी संकर (मिलावट) नहीं होती थी। उनके विवाह, जाति सम्बन्ध तथा व्यवहार आदि सभी कार्य भगवान् की आज्ञानुसार ही होते थे[३] अर्थात् कर्मभूमि की आदि में भगवान् वृषभदेव ने अपने अवधिज्ञान के बल से विदेह क्षेत्र की अनादिनिधन कर्मभूमि की व्यवस्था को देखकर उसी के सदृश ही यहाँ सब व्यवस्था बनाई थी अतः जैसे इस भरतक्षेत्र में मोक्षमार्ग की व्यवस्था सादि है भोगभूमि में या प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा पंचम और छठे काल में मोक्ष नहीं होता है वैसे ही यह वर्ण व्यवस्था भी सादि है फिर भी इसके बिना मोक्ष नहीं है।

सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री नेमिचंद्राचार्य भी कहते हैं—

दुब्भावअसुयसूदगपुप्फवईजाइसंकरादीहिं।
कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेसु जायंते।।९१४।।

१. उत्तरपुराण, पर्व ७४। २. आदिपुराण, पर्व १६। ३. आदिपुराण पर्व १६, पृ. ३६२, ३६३।

"दुर्भाव, अशुचि, सूतक-पातक दोष से युक्त, रजस्वला स्त्री और जातिसंकर आदि दोष से दूषित लोग यदि दान देते हैं तो वे कुभोगभूमि में जन्म लेते हैं तथा जो कुपात्र में दान देते हैं वे भी कुभोगभूमि में जन्म लेते हैं।[१]

जाति व्यवस्था मानने पर ही "जातिसंकर" दोष बनेगा अन्यथा नहीं।

उपासकाध्ययन में भी कहा है—

पित्रोः शुद्धौ यथापत्ये विशुद्धिरिह दृश्यते।
तथाप्तस्य विशुद्धत्वे भवेदागमशुद्धता।।९६।।

"जैसे माता-पिता के शुद्ध होने पर संतान की शुद्धि देखी जाती है। वैसे ही आप्त के निर्दोष होने पर उनका कहा हुआ आगम निर्दोष माना जाता[२] है। "द्रव्य, दाता और पात्र की विशुद्धि होने पर ही विधि शुद्ध हो सकती है।

जैनेन्द्र व्याकरण में श्री पूज्यपादस्वामी ने भी कहा है—

वर्णेनार्हद्रूपायोग्यानाम् ।।९७।।[३]

जो वर्ण से—जाति विशेष से अर्हंत रूप—निर्ग्रंथता के अयोग्य हैं उनमें द्वंद्व समास करने पर नपुंसकलिंग का एकवचन होता है। यथा–

तक्षायस्कारं–बढ़ई और लुहार, रजकतंतुवायं—धोबी और जुलाहा। "वर्ण से" ऐसा क्यों कहा ? तो "मूकबधिरौ" गूँगा और बहरा, इसमें वर्ण का सम्बन्ध नहीं होने से एकवचन नहीं हुआ। "अर्हद्रूप के लिए अयोग्य हो" ऐसा क्यों कहा तो "ब्राह्मण क्षत्रियौ—"ब्राह्मण और क्षत्रिय, ये वर्ण से अर्हंत लिंग के लिए अर्थात् दिगम्बर मुनि रूप जिनमुद्रा के लिए योग्य हैं इसलिए इनमें भी द्वन्द्व समास में द्विवचन होता है। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही जिनमुद्रा के योग्य हैं।

१. त्रिलोकसार। २. उपासकाध्ययन, पृ. २६। ३. शब्दार्णवचन्द्रिका पृ. ३५, जैनेन्द्रमहावृत्ति।

बृहद्दीक्षाविधिः

पूर्वदिने भोजनसमये भाजनतिरस्कारविधिं विधाय आहारं गृहीत्वा चैत्यालये आगच्छेत् ततो बृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापने सिद्धयोगभक्ती पठित्वा गुरुपार्श्वे प्रत्याख्यानं सोपवासं गृहीत्वा आचार्य शान्ति-समाधिभक्तीः पठित्वा गुरोः प्रणामं कुर्यात्।

अथ दीक्षादाने दीक्षादातृजनः शान्तिक-गणधरवलयपूजादिकं यथाशक्ति कारयेत्। अथ दाता तं स्नानादिकं कारयित्वा यथायोग्यालङ्कारयुक्तं महामहोत्सवेन चैत्यालये समानयेत्। स देवशास्त्रगुरुपूजां विधाय वैराग्य-भावनापरः सर्वैः सह क्षमां कृत्वा गुरोरग्रे तिष्ठेत। ततो गुरोरग्रे संघस्याग्रे च दीक्षायै यांचां कृत्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्रीविहितस्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वदिशाभिमुखः पर्यंकासनं कृत्वा आसते, गुरुश्चोत्तराभिमुखो भूत्वा, [१]संघाष्टकं संघं च परिपृच्छ्य लोचं कुर्यात्।

अथ तद्विधिः—**बृहद्दीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्येत्यादिकमुच्चार्य सिद्ध-योगिभक्ती कृत्वा-**

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशांतिनाथाय शान्तिकराय सर्वपापप्रणाशनाय सर्वविघ्नविनाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य (दीक्षार्थी का नाम) सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

इत्यनेन मंत्रेण गन्धोदकादिकं त्रिवारं मंत्रयित्वा शिरसि निक्षिपेत्। शान्तिमंत्रेण गन्धोदकं त्रिःपरिषिच्य मस्तकं वामहस्तेन स्पृशेत्। ततो दध्यक्षतगोमयदूर्वांकुरान् मस्तके वर्धमानमंत्रेण निक्षिपेत्-

ॐ णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसिस्स जं चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जये वा विवादे वा थंभणे वा रणंगणे वा रायंगणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा?-वर्धमान मंत्रः।

ततः पवित्रभस्मपात्रं गृहीत्वा "**ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकृतोत्तमांगाय ज्योतिर्मयाय मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय अ सि आ उ सा स्वाहा**" इदं मंत्रं पठित्वा शिरसि कर्पूरमिश्रितं भस्म परिक्षिप्य "**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा स्वाहा**" अनेन प्रथमं केशोत्पाटनं कृत्वा पश्चात् "**ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः,**

ॐ ह्रीं: सिद्धेभ्यो नमः, ॐ ह्रूं सूरिभ्यो नमः, ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः, ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः'' इत्युच्चरन् गुरुः स्वहस्तेन पंचवारान् केशान् उत्पाटयेत्। पश्चादन्यः कोऽपि लोचावसाने बृहद्दीक्षायां लोचनिष्ठापन-क्रियायां पूर्वाचार्येत्यादिकं पठित्वा सिद्धभक्तिः (क्तिं) कर्तव्या (कुर्यात्) ततः शीर्षं प्रक्षाल्य गुरुभक्तिं दत्वा वस्त्राभरणयज्ञोपवीतादिकं परित्यज्य तत्रैवावस्थाय दीक्षां याचयेत्। ततो गुरुः शिरसि श्रीकारं लिखित्वा ''ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं स्वाहा'' अनेन मंत्रेण जाप्यं १०८ दद्यात्। ततो गुरुस्तस्यांजलौ केशरकर्पूरश्रीखंडेन श्रीकारं कुर्यात्। श्रीकारस्य चतुर्दिक्षु—

रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणं तहा वंदे।
पंचगुरूणं वंदे चारणजुगलं तहा वंदे।।

इति पठन् अंकान् लिखेत्। पूर्वे ३ दक्षिणे २४ पश्चिमे ५ उत्तरे २ इति लिखित्वा **''सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः''** इति पठन् तन्दुलैरञ्जलिं पूरयेत्तदुपरि नालिकेरं पूगीफलं च धृत्वा सिद्धचारित्रयोगिभक्तिं पठित्वा व्रतादिकं दद्यात्। तथा हि—

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।१।।

इति पठित्वा तद्व्याख्या विधेया कालानुसारेणेति निरूप्य पंचमहाव्रतपंच-समितीत्यादि पठित्वा सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते भवतु इति त्रीन् वारान् उच्चार्य व्रतानि दत्वा ततः शान्तिभक्तिं पठेत्। ततः आशीः श्लोकं पठित्वा अंजलिस्थं तन्दुलादिकं दात्रे दापयित्वा, अथ षोडशसंस्कारारोपणं—

१. अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
२. अयं सम्यग्ज्ञानसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
३. अयं सम्यक्चारित्रसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
४. अयं बाह्याभ्यन्तरतपःसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
५. अयं चतुरंगवीर्यसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
६. अयं अष्टमातृमंडलसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
७. अयं शुद्ध्यष्टकावष्टंभसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
८. अयं अशेषपरीषहजयसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
९. अयं त्रियोगासंगमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१०. अयं त्रिकरणासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।

११. अयं दशासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१२. अयं चतुः संज्ञानिग्रहशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१३. अयं पंचेन्द्रियजयशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१४. अयं दशधर्मधारणशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१५. अयमष्टादशसहस्रशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१६. अयं चतुरशीतिलक्षगुणसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।

इति प्रत्येकमुच्चार्य शिरसि लवंगपुष्पाणि क्षिपेत्।

'णमो अरहंताणं' इत्यादि 'ॐ परमहंसाय परमेष्ठिने हं स हं स हं हां ह्रं ह्रौं ह्रीं ह्रें ह्रः जिनाय नमः जिनं स्थापयामि संवौषट्, ऋषिमस्तके न्यसेत्। अथ गुर्वावली पठित्वा अमुकस्य अमुकनामा त्वं शिष्य इति कथयित्वा संयमाद्युपकरणानि दद्यात्।

(पिच्छिका प्रदान)

णमो अरहंताणं भो अन्तेवासिन्! षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादि-गुणोपेतमिदं पिच्छिकोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

(ग्रंथ प्रदान)

ॐ णमो अरहंताणं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय द्वादशांगश्रुताय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं ज्ञानोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

(कमण्डलु प्रदान)

कमंडलुं वामहस्तेन उद्धृत्य—

ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकरणांगाय बाह्याभ्यन्तरमलशुद्धाय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं शौचोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

ततश्च समाधि-भक्तिं पठेत्। ततो नवदीक्षितो मुनिर्गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्य अन्यान् मुनीन् प्रणम्योपविशति यावद्व्रतारोपणं न भवति तावदन्ये मुनयः प्रतिवन्दनां न ददति, ततो दातृप्रमुखा जना उत्तमफलानि अग्रे निधाय तस्मै नमोऽस्त्विति प्रणामं कुर्वन्ति।

ततस्तत्पक्षे द्वितीयपक्षे वा सुमुहूर्त्ते व्रतारोपणं कुर्यात्। तदा रत्नत्रयपूजां विधाय पाक्षिकप्रतिक्रमणपाठः पठनीयः। तत्र पाक्षिकनियमग्रहणसमयात् पूर्वं यदा वदसमदीत्यादि पठ्यते तदा पूर्ववद्व्रतादि दद्यात्। नियमग्रहणसमये यथायोग्यं एकं तपो दद्यात् (पल्यविधानादिकं)। दातृप्रभृतिश्रावकेभ्योऽपि एकं एकं तपो दद्यात्। ततोऽन्ये मुनयः प्रतिवंदनां ददति।

दिगम्बर जैन मुनि दीक्षा विधि की प्रयोग विधि

दीक्षा के पूर्व दिन भोजन की विधि

प्रयोग विधि—

दीक्षा ग्रहण के पूर्वदिवस दीक्षार्थी मंदिर में शांतिविधान या गणधरवलय विधान आदि विधान-पूजा आदि करके, गुरु की पूजा करके गुरु को आहार देवे।

अनंतर आचार्यदेव, उपाध्याय मुनि या साधु जिनसे दीक्षा लेना है उनके श्रीचरणों में श्रीफल चढ़ाकर अगले दिन के लिए प्रार्थना करे। उस समय आहार के अनंतर गुरु उस दीक्षार्थी को थाली, कटोरा आदि बर्तन में—पात्र में भोजन करने का त्याग दे देवें। तब गुरु के आदेश से श्रावक उस दीक्षार्थी को चौके में पाटे पर बिठाकर भोजन परोस कर दीक्षार्थी को करपात्र में आहार देवें।

दीक्षार्थी यदि अव्रती या व्रती—दो से सात आदि प्रतिमा के धारी हैं, वे अपने हाथ धोकर लघु सिद्धभक्ति पढ़कर करपात्र में आहार ग्रहण करें, इसकी विधि निम्न प्रकार है—

अथ भक्तप्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण भावपूजावन्दना-स्तवसमेतं सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य)

पुनः लघु सिद्धभक्ति पढ़ें—

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलघुमव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१।।
तवसिद्धे णयसिद्धे, संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि।।२।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो, कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्त सिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

यदि क्षुल्लक हैं तो पड़गाहन विधि से चौके में जावें, नवधाभक्ति के अनंतर थाली या कटोरा का त्याग गुरु के पास लेकर आहार को गये हैं अतः बैठे ही बैठे करपात्र में

आहार ग्रहण करें, उन्हें प्रत्याख्यान निष्ठापन विधि मालूम ही है, यही उपर्युक्त विधि से सिद्धभक्ति पढ़कर आहार ग्रहण करें।

अनंतर आहार ग्रहण के बाद यदि क्षुल्लक हैं तो वहीं चौके में प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन कर लेवें। विधि—

अथ प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(९ बार णमोकार मंत्र जाप्य कर पूर्वोक्त लघु सिद्धभक्ति पढ़ें)

गुरु के पास ''दीक्षा हेतु उपवास लेने की विधि''

अनंतर गुरु के पास आकर मुनि दीक्षा के लिए उपवास ग्रहण करें, इसकी विधि इस प्रकार है। प्रयोग विधि—

अथ वृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(णमोकार मंत्र, चत्तारिदण्डक, अड्ढाइज्जदीव....आदि सामायिकदण्डक पढ़कर २७ श्वासोच्छ्वास में ९ बार णमोकार मंत्र जपकर थोस्सामिस्तव पढ़ें।)

यथा—तीन आवर्त एक शिरोनति करके—

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा कायेण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स

भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त कर एक शिरोनति करके योगमुद्रा से सत्ताईस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग नमस्कार करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर "थोस्सामिस्तव" पढ़ें।)

थोस्सामिस्तव

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।
उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।।४।।
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।।५।।
एवं मए अभित्थुया, विहुय-रयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पहासत्ता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके वन्दनामुद्रा से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

सिद्धभक्ति (हिन्दी पद्यानुवाद)

(शंभु छंद)

सब सिद्ध कर्म प्रकृती विनाश, निज के स्वभाव को प्राप्त किये।
अनुपमगुण से आकृष्ट तुष्ट, मैं वंदूँ सिद्धी हेतु लिये।।
गुणगण आच्छादक दोष नशें, सिद्धी स्वात्मा की उपलब्धी।
जैसे पत्थर सोना बनता, हों योग्य उपादान अरु युक्ती।।१।।

नहिं मुक्ति अभावरूप निजगुण की, हानि तपों से उचित न है।
आत्मा अनादि से बंधा स्वकृतफल-भुक् तत्क्षय से मुक्ति लहे।।
ज्ञाता दृष्टा यह स्वतनुमात्र, संहार विसर्पण गुणयुत भी।
उत्पाद व व्यय ध्रुवयुत निजगुणयुत, अन्य प्रकार नहीं सिद्धी।।२।।

जो अंतर्बाह्य हेतु से प्रगटित, निर्मल दर्शन ज्ञान कहा।
चारित संपत्ती प्रहरण से, सब घाति चतुष्टय हानि किया।।
फिर प्रगट अचिन्त्य सार अद्भुतगुण, केवलज्ञान सुदर्शन सुख।
अरु प्रवर वीर्य सम्यक्त्व प्रभा-मण्डल चमरादिक से राजित।।३।।

जानें देखें यह त्रिभुवन को जो सदा तृप्त हो सुख भोगें।
तम के विध्वंसक समवसरण में सब को तर्पित कर शोभें।।
वे सभी प्रजा के ईश्वर पर की ज्योति तिरस्कृत कर क्षण में।
बस स्व में स्व से स्व को प्रगटित कर स्वयं स्वयंभू आप बनें।।४।।

अवशेष अघाती बेड़ीवत् जो कर्म बली उनको घाता।
सूक्ष्मत्व अगुरुलघु आदि अनंत, स्वाभाविक क्षायिक गुण पाया।।
वे अन्य कर्म क्षय से निज की, शुद्धी से महिमाशाली हैं।
प्रभु ऊर्ध्वगमन से एक समय में लोक अग्र पर ठहरे हैं।।५।।

जो अन्याकार प्राप्ति हेतु नहिं हुआ विलक्षण किंचित् कम।
वो पूर्व स्वयं संप्राप्त देह, प्रतिकृति है रुचिर अमूर्त अमम।।
सब क्षुधा तृषा ज्वर श्वास कास,जर मरण अनिष्ट योग रहिता।
आपत्ती आदि उग्र दुःखकर भवगत सुख कौन माप सकता।।६।।

सब सिद्ध स्वयं के उपादान से स्वयं अतिशयी बाधरहित।
वृद्धि व ह्रास से रहित विषय-विरहित, प्रतिशत्रू रहित अमित।।
सब अन्य द्रव्य से निरापेक्ष निरुपम, त्रैकालिक अविनश्वर।
उत्कृष्ट अनंतसार सिद्धों के, हुआ परमसुख अति निर्भर।।७।।

नहिं भूख प्यास अतएव विविध रस-अन्न पान से नहिं मतलब।
नहिं अशुची ग्लानी निद्रादिक, माला शय्या से है क्या तब।।
नहिं रोग जनित पीड़ा है तब, उपशमन हेतु औषधि से क्या।
सब तिमिर नष्ट हो गया दिखे, सब जगत् पुनः दीपक से क्या।।८।।

जो विविध सुनय तप संयम दर्शन, ज्ञान चरित से सिद्ध हुए।
गुण संपद् से युत विश्वकीर्ति व्यापी, देवों के देव हुए।।

उत्कृष्ट जनों से संस्तुत जग में, भूत भावि सांप्रत सिद्धा।
मैं नमूं अनंतों को त्रैकालिक, उन स्वरूप की है इच्छा।।९।।

-दोहा-

बत्तिस दोषों से रहित, परम शुद्ध शुभ खान।
करके कायोत्सर्ग जो, भक्ति सहित अमलान।।
नित प्रति वंदे भाव से, सिद्ध समूह महान्।
वह पावे झट परम सुख, ज्ञान सहित शिव धाम।।

अंचलिका (चौबोल छंद)-

हे भगवन् ! श्री सिद्ध भक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसका।
आलोचन करना चाहूँ जो, सम्यग्रत्नत्रय युक्ता।।
अठ विधकर्मरहित प्रभु ऊर्ध्व-लोक मस्तक पर संस्थित जो।
तप से सिद्ध नयों से सिद्ध, सुसंयम सिद्ध चरित सिध जो।।
भूत भविष्यत् वर्तमान, कालत्रय सिद्ध सभी सिद्धा।
नित्यकाल मैं अर्चूं पूजूं, वंदू नमूं भक्ति युक्ता।।
दुःखों का क्षय, कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधि मरणं मम जिनगुण संपति होवे।।

अथ वृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीयोगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक ९ बार महामंत्र जाप्य व थोस्सामि पढ़कर योगिभक्ति पढ़ें)

योगिभक्ति

जन्म जरा बहु मरण रोग अरु, शोक सहस्त्रों से तापित।
दुःसह नरक पतन से डरते, सम्यग्बोध हुआ जाग्रत।।
जलबुदबुदवत् जीवन चंचल, विद्युतवत् वैभव सारे।
ऐसा समझ प्रशमहेतू मुनि-जन वन का आश्रय धारें।।१।।
पंच महाव्रत पंच समिति, त्रय गुप्ति सहित हैं मोह रहित।
शम सुख को मन में धारण कर, चर्या करते शास्त्र विहित।।
ध्यान और अध्ययनशील नित, इन दोनों के वश रहते।
कर्म विशुद्धी करने हेतू, घोर तपश्चर्या करते।।२।।

ग्रीष्म ऋतू में सूर्य किरण से, तपी शिलाओं पर बैठें।
मल से लिप्त देहयुत निस्पृह, कर्म बंध को शिथिल करें।।
काम दर्प रति दोष कषायों, से मत्सर से रहित मुनीश।
पर्वत के शिखरों पर रवि के, सन्मुख मुख कर खड़े यतीश।।३।।
सम्यग्ज्ञान सुधा को पीते, पाप ताप को शांत करें।
क्षमा नीर से पुण्यकाय का, वे मुनि सिंचन नित्य करें।।
धरें सदा संतोष छत्र को, तीव्र ताप संताप सहें।
ऐसे मुनिवर ग्रीष्म काल में, कर्मेन्धन को शीघ्र दहें।।४।।
वर्षा ऋतु में मोरकण्ठ सम, काले इन्द्रधनुष वाले।
खूब गरजते शीतल वर्षा, वज्रपात बिजली वाले।।
ऐसे मेघों को लखकर वे, मुनिगण सहसा रात्रि में।
पुनरपि वृक्ष तलों में बैठें, निर्भय ध्यान धरें वन में।।५।।
मूसल जलधारा बाणों से, ताड़ित होते मुनि पुंगव।
फिर भी चारित से नहिं डिगते, सदा अटल नरसिंह सदृश।।
भव दुःख से भयभीत परीषह, शत्रू का संहार करें।
शूरों में भी शूर महामुनि, वीरों में भी वीर बनें।।६।।
शीत में बरफ कणों से पीड़ित, महाधैर्य कंबल ओढ़ें।
चतुष्पथों में खड़े शीत की, रात बितावें ध्यान धरें।।७।।
आतापन तरुमूल चतुष्पथ, इस विध तीन योगधारी।
सकल तपश्चर्याशाली नित, पुण्य योग वृद्धिंकारी।।
परमानन्द सुखामृत इच्छुक, वे भगवान महामुनिगण।
हमको श्रेष्ठ समाधि शुक्ल, शुचि ध्यान प्रदान करें उत्तम।।८।।
ग्रीष्म ऋतू में गिरि शिखरों पर, वर्षा रात्रि में तरु तल।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ प्रतिपल।।९।।
पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर हैं रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।१०।।

अंचलिका

हे भगवन्! इस योग भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।

मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।३।।

पुनः आचार्य-गुरु उपवास दे देवें। तब दीक्षार्थी आचार्यभक्ति पढ़कर गुरु को नमस्कार करें।

अथ वृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यवंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेणसकल कर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक ९ बार महामंत्र जाप्य व थोस्सामि पढ़कर आचार्यभक्तिपढ़ें)

आचार्यभक्तिः

सिद्ध गुणों की स्तुति में तत्पर, क्रोध अग्नि का नाश किया।
गुप्ती से परिपूर्ण मुक्तियुत, सत्य वचन से भरित हिया।।१।।
मुनि महिमा से जिन शासन के, दीपक भासुरमूर्ति स्वभाव।
सिद्धि चाहते कर्मरजों के, कारण घातन में पटुभाव।।२।।
गुणमणि विरचित तनु षट् द्रव्यों, की श्रद्धा के नित आधार।
दर्शनशुद्ध प्रमादीचर्या, रहित संघ सन्तुष्टीकार।।३।।
उग्र तपस्वी मोहरहित शुभ, शुद्ध हृदय शोभन व्यवहार।
प्रासुक जगह निवास पापहत, आश कुपथ विध्वंसि विचार।।४।।
दशमुंडनयुत दोषसहित, आहारी मुनिगण से अति दूर।
सकल परीषहजयी क्रिया में, तत्पर नित प्रमाद से दूर।।५।।
व्रत में अचलित कायोत्सर्गयुत, कष्ट दुष्ट लेश्या से हीन।
विधिवत् गृहत्यागी निर्मल तनु, इन्द्रियविजयी निद्राहीन।।६।।
उत्कुटिकासन धरें विवेकी, अतुल अखण्डित स्वाध्यायी।
राग लोभ शठ मद मात्सर्यों, रहित पूर्ण शुभ परिणामी।।७।।
धर्मशुक्ल से भावित शुचिमन, आर्तरौद्र द्वय पक्ष रहित।
कुगतिविनाशी पुण्यऋद्धि के, उदय सहित गारवविरहित।।८।।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश में राग सहित।
बहुजन हितकर चरित अभय, निष्पाप महान् प्रभाव सहित।।९।।

इन सब गुण से युक्त तुम्हें, स्थिर योगी आचार्य प्रधान।
बहुत भक्तियुत विधिवत् मुकुलित, करपुटकमल धरूँ शिरधाम।।१०।।
नमूँ तुम्हें कर्मोदय संभव, जन्म जरा मृतिबन्ध रहित।
होवे इति शिव अचल अनघ, अक्षय निर्बाध मुक्तिसुख नित।।११।।

(आचार्यभक्ति की अंचलिका)

-चौबोल छंद-

हे भगवन् ! आचार्य भक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
सम्यग्ज्ञान दरश चारितयुत, पंचाचार सहित आचार्य।
आचारांग आदि श्रुतज्ञानी, उपाध्याय उपदेशकवर्य।।२।।
रत्नत्रय गुण पालन में रत, सर्व साधु का मैं हर्षित।
अर्चन पूजन वंदन करता, नमस्कार करता हूँ नित।।३।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।४।।

अथ वृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर शांतिभक्ति पढ़ें)

शांतिभक्ति

भगवन् ! सब जन तव पद युग की, शरण प्रेम से नहिं आते।
उसमें हेतु विविध दुःखों से, भरित घोर भववारिधि हैं।।
अतिस्फुरित उग्र किरणों से, व्याप्त किया भूमण्डल है।
ग्रीषम ऋतु रवि राग कराता, इंदुकिरण छाया, जल में।।१।।

कुद्धसर्प आशीविष डसने, से विषाग्नियुत मानव जो।
विद्या औषध मंत्रित जल, हवनादिक से विष शांति हो।।
वैसे तव चरणाम्बुज युग-स्तोत्र पढ़ें जो मनुज अहो।
तनु नाशक सब विघ्न शीघ्र, अति शांत हुए आश्चर्य अहो।।२।।

तपे श्रेष्ठ कनकाचल की, शोभा से अधिक कांतियुत देव।
तव पद प्रणमन करते जो, पीड़ा उनकी क्षय हो स्वयमेव।।

उदित रवी की स्फुट किरणों से, ताड़ित हो झट निकल भगे।
जैसे नाना प्राणी लोचन-द्युतिहर रात्रि शीघ्र भगे।।३।।

त्रिभुवन जन सब जीत विजयि बन, अतिरौद्रात्मक मृत्युराज।
भव भव में संसारी जन के, सन्मुख धावे अति विकराल।।
किस विध कौन बचे जन इससे, काल उग्र दावानल से।
यदि तव पाद कमल की स्तुति-नदी बुझावे नहीं उसे।।४।।

लोकालोक निरन्तर व्यापी, ज्ञानमूर्तिमय शान्ति विभो।
नानारत्न जटित दण्डेयुत, रुचिर श्वेत छत्रत्रय हैं।।
तव चरणाम्बुज पूतगीत रव, से झट रोग पलायित हैं।
जैसे सिंह भयंकर गर्जन, सुन वन हस्ती भगते हैं।।५।।

दिव्यस्त्रीदृगसुन्दर विपुला, श्रीमेरु के चूड़ामणि।
तव भामण्डल बाल दिवाकर, द्युतिहर सबको इष्टअति।।
अव्याबाध अचिंत्य अतुल, अनुपम शाश्वत जो सौख्य महान्।
तव चरणारविंदयुगलस्तुति से ही हो वह प्राप्त निधान।।६।।

किरण प्रभायुत भास्कर भासित, करता उदित न हो जब तक।
पंकजवन नहिं खिलते, निद्राभार धारते हैं तब तक।।
भगवन् ! तव चरणद्वय का हो, नहीं प्रसादोदय जब तक।
सभी जीवगण प्रायः करके, महत् पाप धारें तब तक।।७।।

शांति जिनेश्वर शांतचित्त से, शांत्यर्थी बहु प्राणीगण।
तव पादाम्बुज का आश्रय ले, शांत हुए हैं पृथिवी पर।।
तव पदयुग की शांत्यष्टकयुत, संस्तुति करते भक्ति से।
मुझ भाक्तिक पर दृष्टि प्रसन्न, करो भगवन् ! करुणा करके।।८।।

शशि सम निर्मल वक्त्र शांतिजिन, शीलगुण व्रत संयम पात्र।
नमूं जिनोत्तम अंबुजदृग को, अष्टशतार्चित लक्षण गात्र।।९।।

चक्रधरों में पंचमचक्री, इन्द्र नरेन्द्र वृंद पूजित।
गण की शांति चहूँ षोडश-तीर्थंकर नमूं शांतिकर नित।।१०।।
तरुअशोक सुरपुष्पवृष्टि, दुंदुभि दिव्यध्वनि सिंहासन।
चमर छत्र भामण्डल ये अठ, प्रातिहार्य प्रभु के मनहर।।११।।

उन भुवनार्चित शांतिकरं, शिर से प्रणमूँ शांति प्रभु को।
शांति करो सब गण को मुझको, पढ़ने वालों को भी हो।।१२।।

मुकुटहारकुंडल रत्नों युत, इन्द्रगणों से जो अर्चित।
इन्द्रादिक से सुरगण से भी, पादपद्म जिनके संस्तुत।।
प्रवरवंश में जन्मे जग के, दीपक वे जिन तीर्थंकर।
मुझको सतत शांतिकर होवें, वे तीर्थेश्वर शांतिकर।।१३।।

संपूजक प्रतिपालक जन, यतिवर सामान्य तपोधन को।
देश राष्ट्र पुर नृप के हेतू, हे भगवन् ! तुम शांति करो।।१४।।

सभी प्रजा में क्षेम नृपति, धार्मिक बलवान् जगत में हो।
समय-समय पर मेघवृष्टि हो, आधि व्याधि का भी क्षय हो।।
चोरि मारि दुर्भिक्ष न क्षण भी, जग में जन पीड़ाकर हो।
नित ही सर्व सौख्यप्रद जिनवर, धर्मचक्र जयशील रहो।।१५।।

वे शुभद्रव्य क्षेत्र अरु काल, भाव वर्तें नित वृद्धि करें।
जिनके अनुग्रह सहित मुमुक्षु, रत्नत्रय को पूर्ण करें।।१६।।

घातिकर्म विध्वंसक जिनवर, केवलज्ञानमयी भास्कर।
करें जगत में शांति सदा, वृषभादि जिनेश्वर तीर्थंकर।।१७।।

-अंचलिका-

हे भगवन् ! श्री शांतिभक्ति का, कायोत्सर्ग किया उसके।
आलोचन करने की इच्छा, करना चाहूँ मैं रुचि से।।
अष्टमहाप्रातिहार्य सहित जो, पंचमहाकल्याणक युत।
चौंतिस अतिशय विशेष युत, बत्तिस देवेन्द्र मुकुट चर्चित।।
हलधर वासुदेव प्रतिचक्री, ऋषि मुनि यति अनगार सहित।
लाखों स्तुति के निलय वृषभ से, वीर प्रभू तक महापुरुष।।
मंगल महापुरुष तीर्थंकर, उन सबको शुभ भक्ति से।
नित्यकाल मैं अर्चूं, पूजूं, वंदू, नमूं महामुद से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधिलाभ होवे।
सुगति गमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

अथ वृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्ति-योगिभक्ति-आचार्यभक्ति-शांतिभक्तीः-

कृत्वा तद्हीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें)

समाधि भक्तिः

स्वात्मरूप के अभिमुख, संवेदन को श्रुतदृग् से लखकर।
भगवन् ! तुमको केवलज्ञान, चक्षु से देखूँ झट मनहर।।१।।

शास्त्रों का अभ्यास, जिनेश्वर, नमन सदा सज्जन संगति।
सच्चरित्रजन के गुण गाऊँ, दोष कथन में मौन सतत।।
सबसे प्रिय हित वचन कहूँ, निज आत्म तत्त्व को नित भाऊं।
यावत् मुक्ति मिले तावत्, भव भव में इन सबको पाऊँ।।२।।

जैनमार्ग में रुचि हो अन्य, मार्ग निर्वेग हो भव-भव में।
निष्कलंक शुचि विमल भाव हों, मति हो जिनगुण स्तुति में।।३।।

गुरुपदमूल में यतिगण हों, अरु चैत्यनिकट आगम उद्घोष।
होवे जन्म जन्म में मम, सन्यासमरण यह भाव जिनेश।।४।।

जन्म जन्म कृत पाप महत अरु, जन्म करोड़ों में अर्जित।
जन्म जरा मृत्यु के जड़ वे, जिन वंदन से होते नष्ट।।५।।

बचपन से अब तक जिनदेवदेव! तव पाद कमल युग की।
सेवा कल्पलता सम मैंने, की है भक्तिभाव धर ही।।
अब उसका फल माँगू भगवन् ! प्राण प्रयाण समय मेरे।
तव शुभ नाम मंत्र पढ़ने में, कंठ अकुंठित बना रहे।।६।।

तव चरणाम्बुज मुझ मन में, मुझ मन तव लीन चरणयुग में।
तावत् रहे जिनेश्वर! यावत्, मोक्षप्राप्ति नहिं हो जग में।।७।।

जिनभक्ती ही एक अकेली, दुर्गति वारण में समरथ।
जन का पुण्य पूर्णकर मुक्ति-श्री को देने में समरथ।।८।।

पंच अरिंजय नाम पंच-मतिसागर जिन को वंदूं मैं।
पंच यशोधर नमूं पंच-सीमंधर जिन को वंदूं मैं।।९।।

रत्नत्रय को वंदूं नित, चउवीस जिनवर को वंदूं मैं।
पंचपरमगुरु को वंदूं, नित चारण चरण को वंदूं मैं।।१०।।

"अर्हं" यह अक्षर है, ब्रह्मरूप परमेष्ठी का वाचक।
सिद्धचक्र का सही बीज है, उसको नमन करूँ मैं नित।।११।।

अष्टकर्म से रहित मोक्ष-लक्ष्मी के मंदिर सिद्ध समूह।
सम्यक्त्वादि गुणों से युत श्री-सिद्धचक्र को सदा नमूं।।१२।।

सुरसंपति आकर्षण करता, मुक्तिश्री को वशीकरण।
चतुर्गति विपदा उच्चाटन, आत्म-पाप में द्वेष करण।।
दुर्गति जाने वाले का, स्तंभन मोह का सम्मोहन।
पंचनमस्कृति अक्षरमय, आराधन देव! करो रक्षण।।१३।।

अहो अनंतानंत भवों की, संतति का छेदन कारण।
श्री जिनराज पदाम्बुज है, स्मरण करूँ मम वही शरण।।१४।।

अन्य प्रकार शरण नहिं जग में, तुम ही एक शरण मेरे।
अतः जिनेश्वर करुणा करके, रक्ष मेरी रक्षा करिये।।१५।।

त्रिभुवन में नहिं त्राता कोई, नहिं त्राता है नहिं त्राता।
वीतराग प्रभु छोड़ न कोई, हुआ न होता नहिं होगा।।१६।।

जिन में भक्ती सदा रहे दिन-दिन जिनभक्ती सदा रहे।
जिन में भक्ती सदा रहे, मम भव-भव में भी सदा रहे।।१७।।

तव चरणाम्बुज की भक्ती को, जिन! मैं याचूं मैं याचूं।
पुनः पुनः उस ही भक्ति की, हे प्रभु! याचन करता हूँ।।१८।।

विघ्नसमूह प्रलय हो जाते, शाकिनि भूत पिशाच सभी।
श्री जिनस्तव करने से ही, विष निर्विष होता झट ही।।१९।।

-दोहा-

भगवन् ! समाधिभक्ति अरु, कायोत्सर्ग कर लेत।
चाहूँ आलोचन करन दोष विशोधन हेत।।१।।

रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा, उसका ध्यान समाधि है।
नितप्रति उस समाधि को अर्चूं, पूजूँ वंदूं नमूं उसे।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।२।।

दीक्षा से पूर्व मंगल स्नान आदि विधि—

अनंतर दीक्षा दिलाने वाले दीक्षार्थी के पारिवारिकजन या जो यजमान—माता-पिता बनेंगे वे यथाशक्ति दीक्षार्थी से शांतिविधान या गणधरवलयविधान आदि अनुष्ठान करावें। यहाँ तक विधि दीक्षा दिवस के पहले दिन की है। पुनः दीक्षा के दिन—

दाता स्नानादि—मंगलस्नान कराकर यथायोग्य अलंकार आदि से अलंकृत करके महामहोत्सव—गाजे-बाजे के साथ या मंगलगीत-भजन गाते हुए चैत्यालय में लावें।

यहाँ यथायोग्य अलंकार का अर्थ है कि यदि दीक्षार्थी गृहस्थ हैं या महिला कुमारी अथवा सौभाग्यवती हैं तो उनके योग्य वस्त्र-रंगीन, अलंकार, जेवर-हार, मुकुट आदि होवें। यदि ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी हैं या विधवा महिला हैं तो रंगीन वस्त्र और जेवर आदि नहीं पहनाना चाहिए, उनके योग्य श्वेत वस्त्र ही होना चाहिए।

विशेष—इससे पूर्व आचार्यश्री वीरसागर जी की संघ परम्परा के अनुसार मंच पर (बिना दीक्षा का चौक पूरे) दीक्षार्थी का पहले केशलोंच करा देते हैं। उस समय भी लघु सिद्धभक्ति व लघुयोगिभक्ति पढ़ाकर केशलोंच शुरू करते हैं तथा बीच में व चारों तरफ शिर में थोड़े-थोड़े केश छोड़ देते हैं जो कि मंगल चौक पर बैठने के बाद विधिवत् गुरु द्वारा किये जाते हैं। इस केशलोंच के बाद ही दीक्षार्थी को मंगलस्नान कराकर मंच पर लाकर अभिषेक आदि कराते हैं क्योंकि केशलोंच के बाद वस्त्र आदि राख से खराब हो जाते हैं दीक्षा का चौक भी राख से भर जावेगा अतः पूर्व में ही केशलोंच करा देना उचित रहता है।

दीक्षा से पूर्व मंच पर भगवान का अभिषेक—

यहाँ चैत्यालय में लाकर अभिषेक पूजा कराने की आज्ञा है।

संघ परम्परा के अनुसार दीक्षा के पांडाल में भगवान विराजमान करना चाहिए। वहीं दीक्षार्थी को लाकर भगवान का अभिषेक कराकर देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करावें या समयाभाव हो तो अर्घ्य चढ़ा देवें, पुनः वैराग्यभावना से ओतप्रोत दीक्षार्थी सभा में गुरु से प्रार्थना करते हुए चाहे तो पाँच-सात मिनट या जितना भी संभव हो माइक से प्रवचन करते हुए सभा में सभी से व परिवारजनों से क्षमायाचना कराके गुरु के निकट श्रीफल चढ़ाकर जैनेश्वरी दीक्षा की प्रार्थना करे।

इससे पूर्व वहाँ मंच पर सौभाग्यवती महिलाएँ श्वेत धुले हुए चावलों से चौक बनाकर पीले चावलों से स्वस्तिक बनाकर ऊपर श्वेत वस्त्र बिछा देवें।

गुरु की आज्ञा प्राप्त कर दीक्षार्थी उस चौक पर दाहिना पैर आगे बढ़ाकर बैठ जावे। दीक्षार्थी दीक्षा के चौक पर पूर्वदिशा में मुख करके बैठे और दीक्षादाता आचार्यदेव उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठे एवं आचार्यदेव अपने संघ से पूछकर दीक्षाविधि प्रारंभ करें। उसमें सर्वप्रथम केशलोंच क्रिया की विधि है।

दीक्षा प्रयोगविधि—

अथ वृहद्दीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(णमोकार मंत्र, चत्तारि मंगल, अड्ढाइज्जदीव' आदि सामायिक दण्डक पृ. १४ से पढ़कर ९ बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामि' स्तव पढ़कर पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें)

पुनः—

अथ वृहद्दीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ बार महामंत्र जाप्य व थोस्सामि स्तव पढ़कर पृ. ३२ से योगिभक्ति पढ़ें।)

अनंतर आचार्यदेव आगे का तीन बार मंत्र पढ़कर दीक्षार्थी के मस्तक पर भगवान का गंधोदक तीन बार छिड़कें, पुनः गुरु दीक्षार्थी के मस्तक पर अपना बायां हाथ रखें।

गंधोदक क्षेपण का मंत्र—

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजो-मूर्तये नमः श्रीशांतिनाथाय शान्तिकराय सर्वपापप्रणाशनाय सर्वविघ्न-विनाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य (दीक्षार्थी का नाम) सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

इसके बाद आगे का वर्धमानमंत्र पढ़ते हुए दीक्षार्थी के मस्तक पर दही, अक्षत, गोमय और दूब का क्षेपण करें।

वर्धमान मंत्र—

ॐ णमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसिस्स जं चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जये वा विवादे वा थंभणे वा रणंगणे वा रायंगणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा।

पुनः पवित्र भस्म में कपूर मिलाकर—

ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकृतोत्तमांगाय ज्योतिर्मयाय मतिश्रुता-वधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय असि आ उसा स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर दीक्षार्थी के मस्तक पर कर्पूरमिश्रित भस्म क्षेपण करें—

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं असि आ उसा स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर मस्तक में बीच के केशों का प्रथम बार लोंच करे।

पुनः आगे के पाँच मंत्रों को क्रम से पढ़ते हुए मस्तक के बीच में, पूर्व में आदि क्रम से केश उखाड़े।

अर्थात्—**'ॐ ह्राँ अर्हद्भ्यो नमः'** मंत्र बोलकर मस्तक के बीच के केश उखाड़े—केशलोंच करे।

'ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः' मंत्र पढ़कर मस्तक के पूर्व का केशलोंच करे।

'ॐ ह्रूँ सूरिभ्यो नमः' मंत्र बोलकर मस्तक के दायीं तरफ केशलोंच करे।

'ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः' मंत्र बोलकर बायीं तरफ का केशलोंच करे।

'ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः' मंत्र बोलकर मस्तक के पीछे का केशलोंच करे। इस प्रकार गुरु अपने हाथों से इन मंत्रों से पाँच बार केशलोंच कर देवें।

अनंतर यदि पहले केशलोंच करके नहीं आये हैं ऐसे क्षुल्लक या ऐलक हैं तो उनके पूरे केशलोंच कोई भी कर सकते हैं। केशलोंच हो जाने के बाद लोचनिष्ठापन की भक्ति करना है। यथा—

अथ वृहद्दीक्षायां लोचनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्व के समान सामायिक दण्डक, ९ बार महामंत्र का जाप्य व थोस्सामि स्तव पढ़कर 'सिद्धानुद्भूत' आदि पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

पुनः दीक्षार्थी के मस्तक में जो भस्म—राख लग गई है उसे गरम जल से धो देवें। तब दीक्षार्थी लघु आचार्यभक्ति पढ़कर गुरु को नमस्कार करे।

अनंतर दीक्षा के चौक पर ही खड़े होकर दीक्षार्थी ब्रह्मचारी या श्रावक वस्त्र, आभूषण, यज्ञोपवीत आदि को उतार देवे। यदि क्षुल्लक या ऐलक हैं तो अपने वस्त्र उतार देवें और मंगल चौक से न हटकर वहीं पर बैठकर गुरु से दीक्षा की याचना करें।

अर्थात् दीक्षार्थी एक बार दीक्षा के चौक पर बैठ जावें तो पुनः दीक्षा विधि पूर्ण होने तक दीक्षा के चौक से नहीं उठते हैं।

तब आचार्यदेव दीक्षार्थी के मस्तक पर केशर से 'श्रीकार' लिखें।

५

२४ श्रीः २

३

ऐसा लिखकर—

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उसा ह्रीं स्वाहा।

इस मंत्र से १०८ बार जाप्य करें अर्थात् एक-एक बार मंत्र बोलते हुए मस्तक पर पीले पुष्प क्षेपण करें। अनंतर दीक्षार्थी की अंजलि में केशर, कर्पूर मिश्रित श्रीखंड से 'श्रीकार' लिखकर उसके चारों दिशाओं में—

रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणं तहा वंदे।
पंचगुरूणं वंदे, चारणजुगलं तहा वंदे।।

यह गाथा पढ़ते हुए क्रम से 'श्रीः' के पूर्व में अर्थात् सामने ३ का अंक लिखें, दक्षिण में २४ लिखें, पश्चिम में ५ लिखें व उत्तर-बायीं तरफ २ का अंक लिखें, पुनः—

''सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः।''

मंत्र पढ़ते हुए दीक्षार्थी की अंजुलि में तंदुल—धुले हुए चावल भरकर ऊपर में नारियल और सुपाड़ी रख देवें और—

सिद्ध, चारित्र, योगिभक्ति ये तीन भक्तियाँ पढ़कर व्रतादि प्रदान करें।

प्रयोग विधि—

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् पृ. १४ से सामायिकदण्डक, ९ बार महामंत्र का जाप्य व थोस्सामि पढ़कर नीचे लिखी सिद्धभक्ति पढ़ें।) पुनः—

सिद्धभक्ति

सिद्धानुद्भूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान् ।
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारात्।
योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः।।१।।

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी।।

ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरूपसमाहारविस्तारधर्मा।
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः।।२।।

स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या-
सम्पद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः।।
कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्य-सम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ।।३।।

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं संप्रतृप्यन्वितन्वन्,
धुन्वन्ध्वान्तं नितान्तं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा।।
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयंभू प्रवृत्तः।।४।।

छिन्दन्शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनन्तस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वव्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेग्र्ये।।५।।

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह -
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम् ।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपमममितं शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ।।७।।

नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या-
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्नहि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ।
आतंकार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते।।८।।

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपः संयमज्ञानदृष्टि-
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः।

भूता भव्या भवन्तः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टैः
तान्सर्वान्नौम्यनंतान्निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।९।।

–क्षेपक श्लोक–आर्या–

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्टदोषविरहितं सुपरिशुद्धम् ।
अतिभक्ति-संप्रयुक्तो, यो वंदते स लघु लभते परमसुखम्।।

अंचलिका—**इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं तवसिद्धाणं-णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं-चरित्तसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ बार महामंत्र जाप्य व थोस्सामि पढ़कर आगे लिखी चारित्रभक्ति पढ़ें)

चारित्र भक्ति

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूरहारांगदान्।
भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान् ।।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा।
वंदे पंचतयं तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ।।१।।

अर्थव्यंजनतद्द्वयाविकलताकालोपधाप्रश्रयाः।
स्वाचार्याद्यनपन्हवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम्।।
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽजसा।
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ।।२।।

शंकादृष्टिविमोहकांक्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां।
वात्सल्यं विचिकित्सनादुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम् ।।
शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापनम्।
वंदे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ।।३।।

एकान्ते शयनोपवेशनकृतिः संतापनं तानवम् ।
संख्यावृत्तिनिबन्धनामनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम् ।।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्।
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं तपः।।४।।

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्चयुतवतः संप्रत्यवस्थापनम् ।
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।।
कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्विधं।
वंदेऽभ्यंतरमन्तरंगबलवद्विद्वेषिविध्वंसनम् ।।५।।

सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः श्रद्धानमर्हन्मते।
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा लघ्वी भवोदन्वतो।
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं वंदे सतामर्चितम् ।।६।।

तिस्त्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः।
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि।।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरं नमामो वयम् ।।७।।

आचारं सहपंचभेदमुदितं तीर्थं परं मंगलं।
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्रमहतो वंदे समग्रान्यतीन् ।।
आत्माधीनसुखोदयामनुपमां लक्ष्मीमविध्वंसिनी-
मिच्छन्केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्वलाम् ।।८।।

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा।
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति।।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं।
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु मे स्वं निंदतो निंदितम्।।९।।

संसारव्यसनाहतिप्रचलिता नित्योदयप्रार्थिनः।
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः।।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपानमुच्चैस्तरा-
मारोहन्तु चारित्रमुत्तममिदं जैनेन्द्रमोजस्विनः।।१०।।

अंचलिका —इच्छामि भन्ते! चारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। सम्मण्णाणुज्जोयस्स सम्मत्ताहिट्ठिस्स सव्वपहाणस्स णिव्वाणमग्गस्स कम्मणिज्जरफलस्स खमाहारस्स पंचमहव्वयसंपुण्णस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पंचसमिदिजुत्तस्स णाणज्झाण-साहणस्स समयाइव-पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स, णिच्चकालं अंचेमि पूज्रेमि वन्दामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ बार जाप्य, थोस्सामि स्तव पढ़कर आगे लिखी योगिभक्ति पढ़ें)

योगिभक्ति

-दुवई छंद-

जाति-जरोरु-रोगमरणा-तुरशोक-सहस्रदीपिताः।
दुःसह-नरक-पतन-सन्त्रस्त-धियः प्रतिबुध-चेतसः।।
जीवित-मंबुबिंदु-चपलं तडि-दभ्र-समा विभूतयः।
सकल-मिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्त-माश्रिताः।।१।।

-भद्रिका छंद-

व्रतसमिति-गुप्तसंयुताः शमसुख-माधाय मनसि वीतमोहाः।।
ध्यानाध्ययन-वशंगताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति।।२।।

दिनकर-किरण-निकर-संतप्त-शिला-निचयेषु निस्पृहाः।
मलपटला-वलिप्त-तनवः शिथिली-कृत-कर्मबंधनाः।।
व्यपगत-मदन-दर्परतिदोष-कषाय-विरक्त-मत्सराः।
गिरिशिखरेषु चंडकिरणा-भिमुख-स्थितयो दिगंबराः।।३।।

सज्ज्ञाना-मृत-पायिभिः क्षान्तिपयः सिच्यमान-पुण्यकायैः।
धृतसंतोष-च्छत्रकैः, तापस्-तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः।।४।।

शिखिगल-कज्जला-लिमलिनै-र्विबुधा-धिप-च पचित्रितैः।
भीमरवै-र्विसृष्ट-चण्डाशनि-शीतल-वायु-वृष्टिभिः।।
गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः।
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंक-मासते।।५।।

जलधारा-शर-ताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःख-भीरवः परीषहा-राति-घातिन-प्रवीराः।।६।।

अविरत-बहल-तुहिन-कणवारिभि-रंघ्रिप-पत्रपातनैः
अनवरत-मुक्त-सीत्कार-रवैःपरुषैः-
रथानिलैः शोषित-गात्र-यष्टयः।
इह श्रमणा धृतिकंबला-वृताः शिशिर-निशां।
तुषार-विषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः।।७।।

इति योग-त्रय धारिणः सकल-तपः-शालिनः प्रवृद्ध-पुण्यकायाः।
परमानंद-सुखैषिणः समाधि-मग्रयं दिशंतु नो भदन्ताः।।८।।

गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसरे वाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।९।।

गिरिकंदरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिं।।१०।।

अंचलिका—**इच्छामि भंते! योगिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु आदावण-रुक्ख-मूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्ख-खवणादियोग-जुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बेहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

पहले गाथा पढ़ें पुनः समयानुसार उसका अर्थ दीक्षार्थी को व सभा में बतलावें।

अनंतर अट्ठाईस मूलगुण व्रत देवें। जिसकी विधि इस प्रकार है—

वदसमिदिंदिय रोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च।।

पंच महाव्रत पंचसमिति पंचेन्द्रियरोधषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणा उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्त्राणि चतुरशीतिलक्षगुणास्त्रयोदशविधं चारित्रं द्वादशविधं तपश्चेति सकलं संपूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते भवतु। (तीन बार बोलें)

इस पाठ को तीन बार बोलकर शिष्य को व्रतों को प्रदान करें। यहाँ पर अट्ठाईस मूलगुणों का स्पष्टीकरण कर सकते हैं। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियनिरोध, केशलोंच, छह आवश्यक क्रियाएँ, आचेलक्य—सर्ववस्त्रत्याग, अस्नान, भूमि पर शयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन—खड़े होकर भोजन व एकभक्त—एक बार भोजन।

मूलाचार ग्रंथ या 'दिगम्बर मुनि' पुस्तक के आधार से इन व्रतों का स्पष्टीकरण करके प्रदान करें।

यदि समयाभाव है तो अट्ठाईस मूलगुणों के नाम बतलाकर व्रत दे देवें। अनंतर दीक्षा विधि के बाद अपने स्थान पर शिष्य को समझा देवें।

पुनः शांतिभक्ति का पाठ करें—

अथ वृहद्दीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य व थोस्सामि पढ़कर न स्नेहाच्छरणं.... आदि भक्ति पढ़ें)।

शांतिभक्ति

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पाद्द्वयं ते प्रजाः।
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः, संसारघोरार्णवः।।
अत्यन्तस्फुरदुग्ररश्मिनिकर-व्याकीर्णभूमण्डलो।
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिल-च्छायानुरागं रविः।।१।।

क्रुद्धाशीर्विषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो।
विद्याभेषजमन्त्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा।।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुग-स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्।
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा, शाम्यन्त्यहो! विस्मयः।।२।।
संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते।
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्, पीडाः प्रयान्ति क्षयं।।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता।
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा, शीघ्रं यथा शर्वरी।।३।।

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यन्तरौद्रात्मकान् ।
नानाजन्मशतान्तरेषु पुरतो, जीवस्य संसारिणः।।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना, कालोग्रदावानला-
न्नस्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगावारणम्।।४।।

लोकालोकनिरन्तरप्रविततज्ञानैकमूर्ते! विभो!।
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय! ।।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः।
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः।।५।।

दिव्यस्त्रीनयनाभिराम! विपुलश्रीमेरुचूडामणे!
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामंडल!।।
अव्याबाधमचिन्त्यसारमतुलं, त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते।।६।।

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः, श्रीभास्करो भासयं-
स्तावद्-धारयतीह पंकजवनं, निद्रातिभारश्रमम् ।।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय-
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।।७।।

शांतिं शान्तिजिनेन्द्र! शांतमनसस्त्वत्पादपद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शांत्यर्थिनः प्राणिनः।।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः।।८।।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्।।९।।

पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि।।१०।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे, यस्य विभाति च मंडलतेजः।।११।।

तं जगदर्चितशांतिजिनेन्द्रं, शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं, मह्यमरं पठते परमां च।।१२।।

येभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः।
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः।।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपाः।
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु।।१३।।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।१४।।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं।।
दुर्भिक्षं चोरिमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि।।१५।।

तद्द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः, संतन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण, रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे।।१६।।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः, केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शांतिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।।१७।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! संतिभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसाति-सयविशेषसंजुत्ताणं, बत्तीसदेवेंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववा-सुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिनगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

इसके बाद आशीर्वाद श्लोक पढ़कर दीक्षार्थी के हाथ के नारियल, सुपारी, तंदुल को दाता को दिला देवें।

आशीर्वाद श्लोक —

श्रीशांतिरस्तु शिवमस्तु जयोऽस्तु नित्य-
मारोग्यमस्तु तव पुष्टिसमृद्धिरस्तु।
कल्याणमस्त्वभिमतस्तव वृद्धिरस्तु,
दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रधनं सदास्तु।।

(यहाँ पर दाता शब्द से जिन्होंने गणधरवलय विधान आदि कराकर मंगल स्नान आदि कराया है, उन्हें लिया है और उन्हीं को यह नारियल आदि शिष्य के अंजलि के चावल आदि दिलाते हैं। वर्तमान में माता-पिता बनाकर यह सब विधि उनसे कराते हैं, जिनके माता-पिता या परिवार के दंपत्ति कोई भी हैं उन्हें आगे करते हैं या नये किसी योग्य दंपत्ति को ऐसा सौभाग्य मिलता है।)

इसके बाद आचार्यदेव — गुरु सोलह संस्कार मंत्रों से शिष्य के मस्तक पर लवंग व पीले पुष्प क्षेपण करते हुए १६ संस्कारों का आरोपण करें —

१. अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
२. अयं सम्यग्ज्ञानसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
३. अयं सम्यक्चारित्रसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
४. अयं बाह्याभ्यन्तरतपःसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
५. अयं चतुरंगवीर्यसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
६. अयं अष्टमातृमंडलसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
७. अयं शुद्ध्यष्टकावष्टंभसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।

८. अयं अशेषपरीषहजयसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
९. अयं त्रियोगासंगमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१०. अयं त्रिकरणासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
११. अयं दशासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१२. अयं चतुः संज्ञानिग्रहशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१३. अयं पंचेन्द्रियजयशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१४. अयं दशधर्मधारणशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१५. अयमष्टादशसहस्त्रशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।
१६. अयं चतुरशीतिलक्षगुणसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु।

(‘णमो अरहंताणं’ इत्यादि ‘ॐ परमहंसाय इत्यादि मंत्रं पठित्वा ऋषिमस्तके न्यसेत्। अथ गुर्वावली पठित्वा अमुकस्य अमुकनामा त्वं शिष्य इति कथयित्वा संयमाद्युपकरणानि दद्यात्।)

—प्रयोग विधि—

पुनः गुरु—**णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।**
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

“ॐ परमहंसाय परमेष्ठिने हं स हं स हं हां हं हौं ह्रीं ह्रें ह्रः जिनाय नमः जिनं स्थापयामि संवौषट्” यह मंत्र पढ़कर मस्तक पर लवंग आदि क्षेपण करें।

अनंतर अपनी गुर्वावली पढ़कर अमुक के तुम अमुक नाम के शिष्य हो, ऐसा घोषित करके आगे कहे—मंत्र बोलकर गुरू अपने हाथ से ही पिच्छी, कमण्डलु देवें। यदि बोली होकर या पहले से दातार निर्धारित हों जो पिच्छी, शास्त्र, कमण्डलु देने वाले हों, वे गुरु के हाथ में ही देवें। दीक्षादाता गुरू ही सर्वप्रथम शिष्य को पिच्छी, शास्त्र, कमण्डलु देते हैं अनन्तर श्रावक कभी भी पिच्छी परिवर्तन आदि के समय पिच्छी देकर उनके हाथ की पुरानी पिच्छी ले लेते हैं। यह बात विशेष ध्यान देने की है कि प्रथम पिच्छी, शास्त्र व कमण्डलु गुरू ही देते हैं।

गुर्वावली—“अथाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे.....प्रदेशे.....नगरे.....ग्रामे.....तीर्थक्षेत्रे श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सरे २५३९ तमे.....मासोत्तममासे.....पक्षे.....तिथौ.....वासरे श्रीमूलसंघे

सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यपरंपरायां प्रथमाचार्यश्रीशांति-सागरस्तस्य पट्टाचार्यः श्रीवीरसागरः.....तस्य शिष्योऽहं मम अमुक नामधेयस्त्वं शिष्योऽसि इत्यादि रूप से अपनी-अपनी परम्परा की गुर्वावली पढ़कर शिष्य का नया नाम घोषित कर देवें।

पुनः पिच्छिका प्रदान का मंत्र बोलते हुए शिष्य को दोनों हाथों में पिच्छिका देवें।

(पिच्छिका प्रदान)

णमो अरहंताणं भो अन्तेवासिन्! षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादि-गुणोपेतमिदं पिच्छिकोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

ऐसे ही ग्रंथ प्रदान का मंत्र बोलकर ‘मुनिचर्या, मूलाचार’ आदि ग्रंथ देवें। शिष्य दोनों हाथों से शास्त्र ग्रहण करे।

(ग्रंथ प्रदान)

ॐ णमो अरहंताणं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय द्वादशांगश्रुताय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं ज्ञानोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

पुनः गुरु बाएँ हाथ से कमण्डलु उठाकर आगे का मंत्र बोलकर शिष्य को कमण्डलु देवें। शिष्य भी बाएँ हाथ से लेवे।

(कमण्डलु प्रदान)

ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकरणांगाय बाह्याभ्यन्तरमलशुद्धाय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं शौचोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

अनंतर—

वृहद्दीक्षाक्रियानिष्ठापनायां सिद्धभक्त्यादिकं कृत्वा तद्धीनाधिक दोष-विशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् दण्डक आदि पढ़कर समाधिभक्ति पढ़ें)

समाधि भक्तिः

अथेष्ट प्रार्थना—**प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः**
शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः।।१।।
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेंद्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।२।।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं
तं खमउ णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु।।३।।

अंचलिका—**इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिभत्तीए, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

(ततो नवदीक्षितो मुनिर्गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्य अन्यान् मुनीन् प्रणम्योपविशति यावद्व्रतारोपणं न भवति तावदन्ये मुनयः प्रतिवन्दनां न ददति, ततो दातृप्रमुखा जना उत्तमफलानि अग्रे निधाय तस्मै नमोऽस्त्विति प्रणामं कुर्वन्ति।)

अनंतर नवदीक्षित मुनि गुरुभक्तिपूर्वक गुरु को नमस्कार करके अन्य मुनियों को भी नमस्कार करके बैठे।

दाता आदि प्रमुखजन फलों को सन्मुख रखकर नमोऽस्तु कहकर नमस्कार करें।

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरण विधिः

दीक्षा के दिन दीक्षा लेने वाले मुनि या आर्यिका आदि का उपवास रहता है। अगले दिन आहार के पहले अपनी वसतिका में आचार्यदेव शुद्ध गर्म जल ब्रह्मचारी या गृहस्थ श्रावक से मंगवाकर 'मुखशुद्धिमुक्तकरणविधि' करावें।

पं. पन्नालाल जी सोनी, ब्यावर वालों ने इस विधि का ऐसा अर्थ किया था कि आज तक सप्तम प्रतिमाधारी आदि श्रावक बिना मुखशुद्धि किये पूजा नहीं करते थे, न आहारदान देते थे अतः अब आहार से पूर्व मुखशुद्धि का त्याग करने के लिए यह विधि कराई गई। इस विधि को करने के बाद प्रथम आहार करेंगे पुनः आगे अब साधु बिना मुखशुद्धि—बिना कुल्ला किए ही आहार को जावेंगे अतः यह विधि आवश्यक है।

त्रयोदशसु पंचसु त्रिषु वा कच्चोलिकासु लवंग-एला-पूगीफलादिकं निक्षिप्य ताः कच्चोलिकाः गुरोरग्रे स्थापयेत्। 'मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ-क्रियायामित्याद्युच्चार्य सिद्ध-योगि-आचार्य-शान्ति-समाधिभक्तीर्विधाय ततः पश्चान्मुखशुद्धिं गृह्णीयात्।

त्रयोदश पाँच अथवा तीन कटोरियों में लवंग-इलायची-सुपाड़ी-आदि को डालकर वह कटोरियाँ गुरू के सामने स्थापित करें। (इसमें गर्म जल भर देवें)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक, कायोत्सर्ग, थोस्सामि स्तव पढ़े, "सिद्धानुद्भूत...." आदि सिद्धभक्ति का या हिन्दी सिद्ध भक्ति का पाठ करें।

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठक्रियायां.....योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्वदंडकादि करके योगिभक्ति संस्कृत या हिन्दी की पढ़ें।)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ क्रियायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(दंडकादि करके आचार्यभक्ति संस्कृत या हिन्दी की पढ़ें।)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठ क्रियायां.....शांतिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(दंडकादि करके शांतिभक्ति संस्कृत या हिन्दी की पढ़ें।)

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठक्रियायां पूर्वा.....सिद्ध-योगि-आचार्य-शांति-भक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकदोषशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(दंडकादि करके समाधिभक्ति पढ़ें)

पश्चात् मुखशुद्धि ग्रहण करें (गर्मजल से दो-तीन कुल्ला करें)

अर्थात् श्रावक जब तक दीक्षित नहीं होता, आचमन से मुखशुद्धि करता रहता है।

दीक्षा के अनंतर आचमनादि से होने वाली शुद्धि को ही छोड़ते हुए (मुखशुद्धि मुक्तकरण) ऐसी विधि करता है। पुनः आगे उसे मुखशुद्धि (जलादि के द्वारा आचमन) करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

विशेष—जो यह मुनि दीक्षा की विधि यहाँ कही गई है, आर्यिका दीक्षा में यही विधि करने का विधान है।

व्रतारोपिणी क्रिया

पाक्षिक प्रतिक्रमण में अनगारधर्मामृत में बताया है कि **''परे पुनर्व्रतारोपणादिविषयाश्चत्वारः प्रतिक्रमणाः स्युः किंविशिष्टाः! वृहन्मध्यसूरि-भक्तिद्वयोज्झिताः।''**

अर्थात् व्रतारोपणादि चार प्रतिक्रमणों में, वृहदाचार्य 'सिद्धगुणस्तुतिनिरता' से लेकर मध्याचार्यभक्ति 'देस कुल जाइसुद्धा' सहित छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं, पर्यंत दो भक्तियों को छोड़कर शेष सब पाक्षिक प्रतिक्रमणविधि ही करें। अंतर केवल इतना ही है कि प्रयोग विधि में -पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रियायां के स्थान में "व्रतारोपणप्रतिक्रमण क्रियायां" इत्यादि का प्रयोग करें।

जैसे कि-"अथ व्रतारोपणीप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

तथा वीरभक्ति में कायोत्सर्ग का भी प्रमाण १०८ उच्छ्वासों में ही ३६ जाप्य देवें।

तद्यथा- **या व्रतारोपणी सार्वातीचारिक्यातिचारिकी।**
औत्तमार्थी प्रतिक्रान्तिः सोच्छ्वासैरान्हिकी समा।। (अनगार)

अर्थ—व्रतारोपणी, सार्वातिचारी, आतिचारिकी, औत्तमार्थी प्रतिक्रमणाओं में दैवसिक प्रमाण १०८ उच्छ्वासों में कायोत्सर्ग होता है।

विशेष—पाक्षिक प्रतिक्रमण प्रयोग विधि में मध्य-मध्य में पक्खियम्मि आलोचेउं पक्खिओ चउमासिओ संवच्छरिओ आदि जो प्रयोग है वह मर्यादित काल की अपेक्षा से है परन्तु यहाँ पर पक्ष, चार मास आदि कुछ दिन की मर्यादा न होकर चारों ही प्रतिक्रमण अपने सार्थक नाम से संबंधित हैं अतः जो प्रतिक्रमण हो उसके प्रयोग के मध्य-मध्य में भी इन शब्दों के स्थानों में भी परिवर्तन कर देवें। अर्थात् पक्खियम्मि आलोचेउं के स्थान में "व्रतारोपणे आलोचेउं" इत्यादि रूप से प्रयोग करना चाहिए।

ततस्तत्पक्षे द्वितीयपक्षे वा सुमुहूर्त्ते व्रतारोपणं कुर्यात्। तदा रत्नत्रयपूजां विधाय पाक्षिकप्रतिक्रमणपाठः पठनीयः। तत्र पाक्षिकनियमग्रहणसमयात् पूर्वं यदा वदसमदीत्यादि पठ्यते तदा पूर्ववद्व्रतादि दद्यात्। नियमग्रहणसमये यथायोग्यं एकं तपो दद्यात् (पल्यविधानादिकं)। दातृप्रभृतिश्रावकेभ्योऽपि एकं एकं तपो दद्यात्। ततोऽन्ये मुनयः प्रतिवंदनां ददति।

पश्चात् उसी पक्ष में अथवा द्वितीय पक्ष में शुभ मुहूर्त में व्रतारोपण करें। तब रत्नत्रय पूजा कराके पाक्षिक मुहूर्त में व्रतारोपण करें। तब रत्नत्रय पूजा कराके पाक्षिक प्रतिक्रमण पाठ पढ़ना चाहिए और पाक्षिक नियम ग्रहण समय के पूर्व ही

जब "वदसमिदिंदिय" इत्यादि पाठ पढ़ा जाता है तब पूर्व के समान ही व्रतादि देवें। अर्थात् जहाँ वदसमिदिंदिय इत्यादि पढ़कर प्रायश्चित्त देने का विधान है वहीं पर "वदसमिदिंदिय" आदि को तीन बार बोलकर व्रतादि देवे जैसे पूर्व में इस श्लोक को पढ़कर मूलगुणों का वर्णन करने के अनंतर पंचमहाव्रत पंचसमिति..... इत्यादि को तीन बार पढ़कर व्रत प्रदान किये थे तद्वत् इस समय भी करे और नियम ग्रहण के समय पर ही यथायोग्य कोई पल्य विधानादि एकतप (व्रत) भी देवें। तथा दाता—प्रमुख श्रावक आदि को भी कोई न कोई एक-एक तप (व्रत) देवे। तत्पश्चात् सभी मुनिगण प्रतिवंदना करें।

विशेष—व्रतारोपिणी प्रतिक्रमण विधि इस दीक्षा दिवस के बाद उसी पक्ष या द्वितीय पक्ष में अर्थात् एक माह के अंतर्गत अवश्य करें।

अनगार धर्मामृत में भी व्रतारोपिणी प्रतिक्रमण का विधान है। यथा—

"एतेन वृहत्प्रतिक्रमणाः सप्त भवन्तीत्युक्तं भवति। ताश्च यथा—व्रतारोपिणी, पाक्षिकी कार्तिकान्तचातुर्मासी फाल्गुनान्तचातुर्मासी आषाढ़ान्तसांवत्सरी सर्वातिचारी उत्तमार्थी चेति[१]।"

वृहत् प्रतिक्रमण सात होते हैं ऐसा यहाँ कहा गया है। वे ये हैं—१. व्रतारोपिणी २. पाक्षिकी प्रतिक्रमण ३. कार्तिक मास के अंत में—कार्तिक शु. १४ या पूर्णिमा को चातुर्मासिक प्रतिक्रमण, ४. फाल्गुन मास के अंत में—फाल्गुन शु. १४ या पूर्णिमा को चातुर्मासिक—चार महीने का प्रतिक्रमण, ५. आषाढ़ मास के अंत में—आषाढ़ शु. १४ या पूर्णिमा को सांवत्सरिक-वार्षिक प्रतिक्रमण, ६. सर्वातिचार प्रतिक्रमण और ७. उत्तमार्थ—सल्लेखना के समय प्रतिक्रमण ये सात वृहत्प्रतिक्रमण माने गये हैं।

मुनि या आर्यिका दीक्षा देने के बाद उसी पक्ष में या अगले पक्ष में शुभ मुहूर्त में दीक्षादाता गुरु यह व्रतारोपिणी व्रतारोपणविधि करने रूप बड़ा प्रतिक्रमण करते हैं। उस समय पुनः शिष्य के ऊपर व्रतारोपण करते हैं। यही व्रतारोपण प्रतिक्रमण इसका नाम सार्थक है।

१. अनगारधर्मामृत, मूल प्रति, अ. ९, पृ. ५७९।

आर्यिका दीक्षा विधि

प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज की आज्ञा से उनकी परम्परा के सभी आचार्य तथा अन्य भी सभी आचार्य, उपाध्याय व साधुगण पूर्व में कही गई पूरी विधि से ही आर्यिकाओं को दीक्षा देते हैं।

"वदसमिदिंदियरोधो.....आदि पढ़कर व्रत देते समय आचार्यदेव या गणिनी आर्यिकाएँ जो आर्यिका दीक्षा दे रही हों, वे २८ मूलगुणों को प्रदान करें। उसमें यह स्पष्ट करें कि आर्यिका के लिए दो साड़ी नाम से किंचित् चेल—'आचेलक्य व्रत' है और 'स्थितिभोजन' में बैठकर आहार लेना है। शेष सभी व्रत मुनियों के समान हैं। जो पाँच महाव्रत हैं, इन्हें भी 'उपचार महाव्रत' संज्ञा है।

आगे षोडश संस्कार के मंत्रों को इस प्रकार पढ़कर आरोपित करना चाहिए—

१. अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
२. अयं सम्यग्ज्ञानसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
३. अयं सम्यक्चारित्रसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
४. अयं बाह्याभ्यन्तरतपःसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
५. अयं चतुरंगवीर्यसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
६. अयं अष्टमातृमंडलसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
७. अयं शुद्ध्यष्टकावष्टंभसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
८. अयं अशेषपरीषहजयसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
९. अयं त्रियोगासंगमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
१०. अयं त्रिकरणासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
११. अयं दशासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
१२. अयं चतुः संज्ञानिग्रहशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
१३. अयं पंचेन्द्रियजयशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
१४. अयं दशधर्मधारणशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
१५. अयमष्टादशसहस्त्रशीलतासंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।
१६. अयं चतुरशीतिलक्षगुणसंस्कार इह आर्यिकायां स्फुरतु।

आर्यिकाओं के लिए मुनिसदृश चर्या के प्रमाण श्री कुंदकुंददेव कृत मूलाचार में व आचारसार में भी उपलब्ध हैं। यथा—

एसो अज्जाणं पि य सामाचारो जहाक्खिओ पुव्वं।
सव्वह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहाजोग्गं।।६७।।

(मूलाचार-श्रीकुंदकुंदकृत)

मूलगुणों के अनुरूप आचरण को सामाचार कहते हैं अर्थात् मुनि के सामाचार का इससे पूर्व में जैसा वर्णन किया है, वैसा ही आर्यिका के सामाचार का भी वर्णन समझना चाहिए अर्थात् दिवस और रात्रि संबंधी सभी क्रियाएँ मुनियों के सदृश ही हैं। अंतर इतना ही है कि वृक्षमूल योग, आतापन योग, अभ्रावकाश योग ऐसे योगादिक आचरण का आर्यिकाओं के लिए निषेध है, क्योंकि वह उनकी आत्मशक्ति के बाहर है।

लज्जाविनय-वैराग्य-सदाचार-विभूषिते।
आर्याव्रते समाचारः संयतेष्विव किन्त्विह।।८१।।

(आचारसार, पृ. ४२)

जिस प्रकार यह सामाचार नीति मुनियों के लिए बतलाई गई है, उसी लज्जादि गुणों से विभूषित आर्यिकाओं को भी इन्हीं समस्त समाचार नीतियों का पालन करना चाहिए तथा प्रायश्चित्त ग्रंथ में भी आर्यिकाओं को मुनियों के बराबर प्रायश्चित्त का विधान है तथा क्षुल्लकादि को उनसे आधा इत्यादिरूप से है। जैसे—

"जैसा प्रायश्चित्त साधुओं के लिए कहा गया है, वैसा ही आर्यिकाओं के लिए कहा गया है विशेष इतना है कि दिनप्रतिमा, त्रिकालयोग चकार शब्द से अथवा ग्रंथांतरों के अनुसार पर्यायच्छेद (दीक्षाच्छेद) मूलस्थान तथा परिहार ये प्रायश्चित भी आर्यिकाओं के लिए नहीं हैं।"

आर्यिकाओं के लिए दीक्षा विधि भी अलग से नहीं है। मुनिदीक्षा विधि से ही उन्हें दीक्षा दी जाती है। इन सभी कारणों से स्पष्ट है कि आर्यिकाओं के व्रत, चर्या आदि मुनियों के सदृश हैं।

इन्हें 'महाव्रतपवित्रांगा' 'संयतिका' आदि भी कहा है। यथा—

साहं दुःखक्षयाकांक्षा दीक्षां जैनेश्वरीं भजे.....महाव्रतपवित्रांगा महासंवेगसंगता।। (पद्मपुराण, तृ. पृ. २८४)

अन्यदातनलोचक्रिया

(दीक्षा के अनंतर अन्य समय में केशलोंच करने की क्रिया)

लोचो द्वित्रिचतुर्मासैर्वरो मध्योऽधमः क्रमात्।
लघुप्राग्भक्तिभिः कार्यः सोपवासप्रतिक्रमः।।

अथ लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं (९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करके) '**तवसिद्धे**' इत्यादि लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।

अथ लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं (९ बार णमोकार मंत्र का जाप्य करके) "**प्राभृटकाले**" इत्यादि लघु योगिभक्ति पढ़ें।

अनन्तरं स्वहस्तेन परहस्तेनापि वा लोचः कार्यः

अर्थात् आपके हाथ से अथवा दूसरे से केशलोंच करावें। पुनः केशलोंच समाप्त होने पर पढ़ें-

अथ लोचनिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं-

('तवसिद्धे' इत्यादि पढ़ें) अनन्तरं प्रतिक्रमणं कर्तव्यम्।

अर्थ—दो महीने से उत्तम, तीन महीने से मध्यम व चार महीने से लोच करना जघन्य कहलाता है। उपवास और प्रतिक्रमण सहित लघु सिद्ध व लघु योगिभक्तिपूर्वक लोच करके पुनः लघु सिद्धभक्तिपूर्वक निष्ठापन करना चाहिए। अर्थात् जहाँ तक बने वहाँ तक चतुर्दशी प्रतिक्रमण के दिन ही लोच करें। यदि अन्य दिन में करें तो लुञ्च संबंधी प्रतिक्रमण को करना चाहिए। दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया ही लुञ्च प्रतिक्रमण में बताई है क्योंकि गोचार और लोच प्रतिक्रमण दैवसिक में ही गर्भित होते हैं, ऐसा वचन है।

लोच प्रयोग विधि में "लोच प्रतिष्ठापनक्रियायां" इत्यादि रूप से दोनों भक्ति पढ़कर "स्वहस्तेन परहस्तेन वा लोचः कार्यः" लोच करके लघु सिद्धभक्तिपूर्वक "लोच निष्ठापन क्रियायां" इति प्रयोग विधि से निष्ठापन करें।

आहारचर्या कब और कैसे ?

साधु मंदिर में जाकर मध्यान्ह देववन्दना और गुरु वन्दना करके आहार को निकलते हैं ऐसा मूलाचार टीका, अनगार धर्मामृत आदि में विधान है फिर भी आजकल ९ बजे से लेकर ११ बजे तक के काल में आहार को निकलते हैं। संघ के नायक आचार्य आदि गुरु पहले निकलते हैं, उनके पीछे-पीछे क्रम से मुनि, आर्यिकायें, ऐलक, क्षुल्लक और क्षुल्लिकायें निकलते हैं अतः मंदिर में सभी संघ पहुँच जाता है तब मात्र गुरुवंदना करके भगवान् की सामान्य स्तुति वंदना करके निकलते हैं। मुनिगण बायें हाथ में पिच्छी-कमंडलु लेकर दाहिने हाथ की मुद्रा को कंधे पर रखकर निकलते हैं। किसी संघ में मुनिगण दाहिने हाथ में पिच्छी और बायें हाथ में कमंडलु लेकर निकलते हैं पुनः दातार के द्वार पर पड़गाहन के बाद बायें हाथ में पिच्छी लेकर दाहिने हाथ की मुद्रा कंधे पर रख लेते हैं।

नवधा भक्ति

१. पड़गाहन करना २. उच्च आसन देना ३. पाद प्रक्षालन करना ४. अष्टद्रव्य से पूजन करना ५. पंचांग नमस्कार करना ६. मनशुद्धि ७. वचनशुद्धि ८. कायशुद्धि और ९. भोजनशुद्धि कहना ये नवधा भक्ति हैं।

जब श्रावक नवधा भक्ति करके "हे स्वामिन् ! आहार ग्रहण कीजिये।" ऐसी प्रार्थना करके शुद्ध गरम जल से साधु के हाथ धुला देते हैं तब साधु वहीं चौके में पूर्व दिन के ग्रहण किये हुए आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान या उपवास की निष्ठापन क्रिया करते हैं। जैसा कि अनगार धर्मामृत और आचारसार आदि ग्रंथों में लिखा है—

"हेयं-त्याज्यं साधुना निष्ठाप्यमित्यर्थः। किं तत्? प्रत्याख्यानादि प्रत्याख्यानमुपोषितं वा। क्व? अशनादौ-भोजनारंभे। कया? सिद्धभक्त्या। किं विशिष्टया? लघ्व्या।[१]

अर्थ—साधु चौके में भोजन प्रारंभ करते समय लघु सिद्धभक्ति के द्वारा पूर्व दिन के ग्रहण किये गये प्रत्याख्यान या उपवास का निष्ठापन करें—त्याग कर देवें।

कोई साधु मंदिर में या गुरु के पास ही सिद्धभक्तिपूर्वक प्रत्याख्यान की निष्ठापना करके आहार को जाते हैं। सो समझ में नहीं आया, ऐसा कहीं आगम में विधान नहीं है।

पुनः वहीं आहार के अनंतर मुखशुद्धि करके तत्क्षण ही प्रत्याख्यान ग्रहण कर लेवें। सो ही देखिये—

"आदेयं च-लघ्व्या सिद्धभक्त्या प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत् ?

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ३७ की टीका।

प्रत्याख्यानादि। क्व? अंते प्रक्माद् भोजनस्यैव प्रांते। कथं? आशु शीघ्रं भोजनानंतरमेव। आचार्यासन्निधावेतद्विधेयं।"[१]

साधु शीघ्र ही—भोजन के अनंतर ही आचार्य की अनुपस्थिति में—वहीं चौके में ही लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण कर लेवें अर्थात् अगले दिन आहार ग्रहण के पूर्व तक चतुर्विध आहार का त्याग कर देवें या अगले दिन उपवास करना है तो उपवास ग्रहण कर लेवें।

उसकी विधि निम्न प्रकार है—

नवधाभक्ति के बाद आहार प्रारंभ करने के पहले की विधि—

प्रत्याख्यान विसर्जन विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार जाप्य)

यदि पहले दिन का उपवास था तो—

नमोऽस्तु उपवासनिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र का जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरितसिद्धे य।
णाणम्हि दंसणम्हि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।

इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

यहां 'प्रत्याख्यान निष्ठापन" का अर्थ है कि जो चतुर्विध आहार का मैंने त्याग किया था उस त्याग—प्रत्याख्यान को मैं अब निष्ठापित करता हूँ—समाप्त करता हूँ।

पुनः हाथ की अंजुलि जोड़कर आहार ग्रहण करें उसके बाद शीघ्र ही मुखशुद्धि करके वहीं पर निम्न विधि करें।

१. अनगार धर्मामृत अ. ९, श्लोक ३७ की टीका।

प्रत्याख्यान ग्रहण विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र का जाप्य)

यदि अगले दिन का उपवास लेना है तो—

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य)

पृ. ४८ से तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि लघु सिद्धभक्ति पढ़ें।

(पुनः "अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु पंचगुरु साक्षी से मेरा अगले दिन आहार ग्रहण करने तक चतुर्विध आहार का त्याग है।" ऐसा संकल्प करें।)

"प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन" का अर्थ है कि मैं अब चतुर्विध आहार के प्रत्याख्यान—त्याग को प्रतिष्ठापित—स्वीकार करता हूँ—ग्रहण करता हूँ।

पुनः श्रावक के घर से निकलकर साधु अपनी वसतिका में आकर आचार्य के समीप गवासन से बैठकर प्रत्याख्यान ग्रहण करें। सो ही कहा है—

"सूरौ-आचार्यसमीपे पुनर्ग्राह्यं प्रतिष्ठाप्यं साधुना। किं तत्? प्रत्याख्यानादि। कया? लघ्व्या सिद्धभक्त्या.....लघु योगिभक्त्यधिकया तथा वंद्यः साधुना? स सूरिः। कया? सूरिभक्त्या। किं विशिष्टया? लघ्व्या[१]।"

पुनः आचार्य के पास में बैठकर साधु लघु सिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण करें अनंतर लघु आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।

इसके प्रयोग की विधि निम्न प्रकार है—

गुरू के पास प्रत्याख्यान ग्रहण विधि

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि पृ. ४८ से लघु सिद्धभक्ति पढ़े।

नमोऽस्तु प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२५ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

१. अनगार धर्मामृत।

लघु योगिभक्ति

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासाः।
हेमंते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः।।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ताः गिरिशिखरगताः स्थानकूटांतरस्थाः।
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूता।।१।।

गिह्मे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे बाहिर-सयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।२।।
गिरि - कंदर - दुर्गेषु ये वसंति दिगंबराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।३।।

अंचलिका—**इच्छामि भंत्ते! योगिभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्कपास-कुक्कुडासण-चउत्थ-पक्खखवणादिजोगजुत्ताणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

यदि अगले दिन का उपवास ग्रहण करना है तो ऐसा बोलना चाहिए-

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य, तवसिद्धे इत्यादि पृष्ठ ४८ से)

नमोऽस्तु उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां.....योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(९ जाप्य, प्रावृट्काले इत्यादि योगिभक्ति ऊपर से)

इसके बाद आचार्यदेव अगले दिन के लिए प्रत्याख्यान या उपवास दे देते हैं—

लघु योगिभक्ति —

बिजली चमके अति जल बरसे, वर्षा में तरुतल बैठें।
शीतकाल रात्रि में निर्भय, काष्ठसदृश निर्मम तिष्ठें।।
गर्मी में रविकिरण तप्त गिरि, शिखरों पर निजध्यान धरें।
शिवपथ पथिक साधु पुंगव वे, मुझको धर्म प्रदान करें।।१।।

ग्रीष्मऋतू में पर्वत ऊपर, वर्षा में तरु के नीचे ।
शीतकाल में बाहर सोते, उन मुनि को वंदूँ रुचि से।।२।।

(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिपूर्वकं श्वः आहारग्रहणात् प्राक्पर्यंत चतुर्विधाहारत्यागं कारयामि तव-युष्माकं।)

अनंतर सभी साधु आचार्य वंदना करते हैं—

नमोऽस्तु आचार्यवंदनायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(२७ उच्छ्वास में ९ जाप्य)

लघु आचार्यभक्ति

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वंदे।।२।।

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।

पर्वत कंदर दुर्गों में जो, नग्न दिगम्बर तन रहते।
पाणिपात्रपुट से आहारी, वे मुनि परमगती लभते।।३।।

अंचलिका —

हे भगवन्! इस योगभक्ति का, कायोत्सर्ग किया रुचि से।
उसकी आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।
ढाई द्वीप अरु दो समुद्र की, पन्द्रह कर्म भूमियों में।
आतापन तरुमूल योग, अभ्रावकाश से ध्यान धरें।।१।।
मौन करें वीरासन कुक्कुट, आसन एकपार्श्व सोते।
बेला तेला पक्ष मास, उपवास आदि बहु तप तपते।।
ऐसे सर्व साधुगण की मैं, सदा काल अर्चना करूँ।
पूजूँ वंदूँ नमस्कार भी, करूँ सतत वंदना करूँ।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुणसंपद् होवे।।३।।

शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः।।४।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

*अंचलिका —***इच्छामि भंत्ते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।**

गोचार प्रतिक्रमण कब और कैसे करें?

आचार्यदेव की वंदना के बाद साधुवर्ग गोचार प्रतिक्रमण करें। जिनके घर में आहार हुआ है उनका नाम आदि बताकर आहार में जो कुछ अतिचार आदि लगे हों उनको कहना चाहिए। किन्हीं-किन्हीं संघ में आहार में जो कुछ ग्रहण किया है उन सब वस्तुओं को भी बतलाते हैं यह भी अच्छी परम्परा है। इससे शिष्यों के स्वास्थ्य के अनुकूल-प्रतिकूल वस्तु की जानकारी हो जाने से गुरु उसे अनुकूल वस्तु लेने व प्रतिकूल वस्तु न लेने आदि की शिक्षा भी देते हैं।

गोचार प्रतिक्रमण का अर्थ है—

''पडिक्कमामि भंते! अणेसणाए पाणभोयणाए.....''

इत्यादि दण्डक का पढ़ना किन्तु अनगार धर्मामृत में इन लघु प्रतिक्रमणों को 'दैवसिक प्रतिक्रमण' में ही अन्तर्भूत माना गया है अतः इस समय पृथक् इस दण्डक को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

यथा—''तथा स प्रतिक्रमो निषिद्धिकेर्यालुंचाशनदोषार्थश्चांतर्भवति। क्व? अपरे आह्निकादौ प्रतिक्रमे।''[१]

निषिद्धिका, ईर्यापथ, लोच, गोचार और स्वप्नदोष ये लघु प्रतिक्रमण दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में अंतर्भूत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि लोच, रात्रिक, दैवसिक, गोचार, निषेधिकागमन, ईर्यापथ और दोष ये सात लघु प्रतिक्रमण होते हैं। इनमें से ईर्यापथशुद्धि प्रतिक्रमण जो कि त्रिकाल देववंदना में आता है उसमें निषेधिका गमन प्रतिक्रमण गर्भित हो जाता है। दोष प्रतिक्रमण—निद्रासंबंधि प्रतिक्रमण रात्रिक में एवं

१. अनगारधर्मामृत अ. ८, श्लोक ५८ की टीका।

लोच और गोचार प्रतिक्रमण दैवसिक में अंतर्भूत हो जाते हैं।

अनगार धर्मामृत में एक प्रश्न हुआ है कि साधु गुरु के परोक्ष में ही चौके में ही प्रत्याख्यान क्यों ले लेते हैं? उसका समाधान दिया है कि "दैवयोग से यदि कदाचित् गुरु के पास आते समय मार्ग में ही आयु समाप्त हो गई हो, प्रत्याख्यान के बिना मृत्यु हो जाने से वह साधु विराधक — असमाधि से मरण करने वाला हो जावेगा अतः शीघ्र ही प्रत्याख्यान स्वयं ले लेना चाहिए फिर आकर गुरु के पास भी लेना चाहिए।[१]

विशेष ज्ञातव्य— आजकल किन्हीं संघों में साधु आहार के पहले ही गुरु के पास प्रत्याख्यान निष्ठापन की भक्ति पढ़ लेते हैं और गुरु के पास ही प्रत्याख्यान का त्याग करके आहार को जाते हैं। सो यह परम्परा कैसे चालू हुई कौन जाने? यह आगमोक्त नहीं है। आचारसार में भी लिखा है कि "साधु दातार द्वारा पड़गाहन आदि नवधाभक्ति के पूर्ण हो जाने के बाद ही सिद्धभक्ति करके प्रत्याख्यान का निष्ठापन करे पुनः आहार ग्रहण करे।"[२]

क्रियाकलाप में पंडित पन्नालाल जी सोनी ने भी यही विधि लिखी है। यथा — "भोजन के पहले लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास का त्याग — निष्ठापन करें और भोजन के बाद शीघ्र ही लघु सिद्धभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण करें। यह तो आचार्य की असमक्षता में करें। आचार्य के समीप में लघु सिद्धभक्ति, लघु योगिभक्ति पढ़कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास धारण करें। अनन्तर लघु आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्य की वंदना करें।"[३]

१. अनगारधर्मामृत अ. ९, श्लोक ३८। २. आचारसार अ. ५, श्लोक ११६ से १२२।
३. क्रियाकलाप पृ. ४१-४२।

उपाध्याय दीक्षा विधि

चतुर्विध संघ में जो मुनि पढ़ाने में कुशल हैं। चारों अनुयोगों में कुशल — निष्णात हैं। अनेक मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका आदि को पढ़ाते हैं, प्रौढ़ हैं। वय में भी बड़ी उम्र के हैं।

ऐसे मुनि को आचार्यदेव उपाध्याय पद प्रदान करते हैं। उसी की विधि यहाँ आगम के अनुसार दी जा रही है।

अथोपाध्यायपददानविधिः

सुमुहूर्ते दाता गणधरवलयार्चनं द्वादशाङ्गश्रुतार्चनं च कारयेत्। ततः श्रीखंडादिना छटान् दत्वा तन्दुलैः स्वस्तिकं कृत्वा तदुपरि पट्टकं संस्थाप्य तत्र पूर्वाभिमुखं तमुपाध्यायपदयोग्यं मुनिमासयेत्। अथोपाध्यायपदस्थापन-क्रियायां पूर्वाचार्येत्याद्युच्चार्य सिद्धश्रुतभक्ती पठेत्। तत आवाहनादिमंत्रानुच्चार्य शिरसि लवंगपुष्पाक्षतं क्षिपेत्। तद्यथा-ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्याय-परमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट्, आह्वाननं स्थापनं सन्निधीकरणं। ततश्च "ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिने नमः" इमं मंत्रं सहेन्दुना चन्दनेन शिरसि न्यसेत्। ततश्च शान्तिसमाधिभक्ती पठेत्। ततः स उपाध्यायो गुरुभक्तिं दत्वा प्रणम्य दात्रे आशिषं दद्यादिति।

शुभ मुहूर्त में जो यजमान या दाता गणधरवलय विधान पूजा और द्वादशांग श्रुत पूजा — श्रुतस्कंध विधान या आयोजन अच्छे रूप में करें। पुनः दीक्षा के पांडाल में चौक बनवावें। सौभाग्यवती महिलाएँ श्रीखंड आदि केशर से वहाँ छींटे देकर तंदुल से स्वस्तिक बनावें। उस पर पाटा — नया पाटा स्थापित करें। उस पर उपाध्याय पद के योग्य ऐसे मुनि को पूर्व की ओर मुख करके बिठावें। पुनः उपाध्याय पद की स्थापना की क्रिया में आचार्यदेव भक्तिपाठ करें।

अथ उपाध्यायपदस्थापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, नव जाप्य एवं थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें)

अथ उपाध्यायपदस्थापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर आगे लिखी हुई संस्कृत व हिन्दी दोनों में से एक श्रुतभक्ति पढ़ें)

श्रुतभक्ति

आर्या छंद

स्तोष्ये संज्ञानानि, परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि।
लोकालोकविलोकनलोलितसल्लोकलोचनानि सदा।।१।।
अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं।
बह्वाद्यवग्रहादिककृतषट्त्रिंशत्त्रिशतभेदम् ।।२।।
विविधर्द्धिबुद्धिकोष्ठस्फुटबीजपदानुसारिबुद्ध्यधिकं।
संभिन्नश्रोतृतया सार्धं श्रुतभाजनं वंदे।।३।।
श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि ।।४।।
पर्यायाक्षरपदसंघातप्रतिपत्तिकानुयोगविधीन् ।
प्राभृतकप्राभृतकं, प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च।।५।।

श्रुतभक्ति

चौबोल छंद —

लोकालोक विलोकन लोकित, सल्लोचन है सम्यग्ज्ञान।
भेद कहे प्रत्यक्ष परोक्ष, द्वय हैं सदा नमूं सुखदान।।१।।
मतिज्ञान अभिमुख नियमित बोधन इन्द्रिय मन से उपजे।
अवग्रहादिक बहुआदिकयुत, तीन सौ छत्तीस भेद लसें।।२।।
विविध ऋद्धि बुद्धि कोष्ठ स्फुट बीज सुपदानुसारी हैं।
ऋद्धि कही संभिन्नश्रोतृता, इन युत श्रुत को वंदू मैं।।३।।
जिनवर कथित रचित गणधर से, युत अंगांग बाह्य संयुत।
द्वादश भेद अनेक अनंत, विषययुत वंदूं मैं जिनश्रुत।।४।।
पर्याय अक्षर पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग सहित।
प्राभृत-प्राभृत कहे तथा, प्राभृतक वस्तु अरु पूर्व दशक।।५।।

तेषां समासतोऽपि च, विंशतिभेदान् समश्नुवानं तत्।
वंदे द्वादशधोक्तं, गभीरवर - शास्त्रपद्धत्या।।६।।
आचारं सूत्रकृतं, स्थानं समवायनामधेयं ।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च, ज्ञातृकथोपासकाध्ययने।।७।।
वंदेऽतकृद्दशमनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम् ।
प्रश्नव्याकरणं हि, विपाकसूत्रं च विनमामि।।८।।
परिकर्म च सूत्रं च, स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते।
सार्द्धं चूलिकयापि च, पंचविधं दृष्टिवादं च।।९।।
पूर्वगतं तु चतुर्दश-धोदितमुत्पादपूर्वमाद्यमहम् ।
आग्रायणीयमीडे, पुरुवीर्यानुप्रवादं च ।।१०।।
संततमहमभिवंदे, तथास्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवादसत्यप्रवादमात्मप्रवादं च ।।११।।
कर्मप्रवादमीडेऽथ, प्रत्याख्याननामधेयं च।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च ।।१२।।

प्रत्येकों दस में समासयुत, बीस भेद होते उनको।
वर गंभीर शास्त्र पद्धति से, द्वादश अंग नमूं सबको।।६।।
आचारांग सूत्रकृत स्थानांग तथा समवाय महान।
व्याख्याप्रज्ञप्ति अरु ज्ञातृकथा उपासक अध्ययनांग।।७।।
अंतकृत दश अनुत्तरोपपादिक दश युत अंग कहे।
अंग प्रश्नव्याकरण विपाक, सूत्र अंग प्रणमूं नित मैं।।८।।
दृष्टिवाद युत द्वादशांग हैं, दृष्टिवाद के पांच प्रकार।
परीकर्म अरु सूत्र प्रथम, अनुयोग पूर्व चूलिका सुसार।।९।।
कहे पूर्वगत चौदह उनमें, है उत्पाद पूर्व पहला।
अग्रायणि अरु पुरुवीर्यानुप्रवाद पूर्व हैं नमूं सदा।।१०।।
अस्तिनास्ति सुप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व शुभ हैं।
सत्यप्रवाद पूर्व अरु आत्मप्रवाद पूर्व प्रणमूँ नित मैं।।११।।
कर्म प्रवादपूर्व अरु प्रत्याख्यानपूर्व है उत्तम श्रुत।
वंदूं विद्यानुप्रवाद को , क्षुद्रमहाविद्या संयुत ।।१२।।

कल्याणनामधेयं, प्राणावायं क्रियाविशालं च।
अथ लोकविंदुसारं, वंदे लोकाग्रसारपदं।।१३।।
दश च चतुर्दश चाष्टा-वष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।
षोडश च विंशतिं च, त्रिंशतमपि पंचदश च तथा।।१४।।
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि, विंशतिं विंशतिं नौमि।।१५।।
पूर्वांतं ह्यपरातं ध्रुवमध्रुवच्यवनलब्धिनामानि।
अध्रुवसंप्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च।।१६।।
सर्वार्थकल्पनीयं, ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालं।
सिद्धिमुपाध्यं च तथा, चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य।।१७।।
पंचमवस्तुचतुर्थ - प्राभृतकस्यानुयोगनामानि।
कृतिवेदने तथैव, स्पर्शनकर्मप्रकृतिमेव।।१८।।
बंधननिबंधनप्रक्रमानुपक्रममथाभ्युदयमोक्षौ ।
संक्रमलेश्ये च तथा, लेश्यायाः कर्मपरिणामौ।।१९।।

कल्याणानुप्रवाद प्राणावाय सुक्रियाविशालं श्रुत।
पूर्व लोकविंदूसारं ये, चौदह पूर्व नमूं संतत।।१३।।
दस चौदह अठ अठरह बारह, बारह सोलह बीस अरु तीस।
पंद्रह दस-दस-दस-दस क्रम से, चौदह पूर्व की वस्तु कथित।।१४।।
एक-एक वस्तू में होते, बीस-बीस प्राभृतक नमूं।
चौदह पूर्व सुप्राभृतयुत, इक सौ पंचानवे वस्तु नमूं।।१५।।
पूर्वांतरु अपरांत ध्रुवं, अध्रुव अरु च्यवन लब्धि नामक।
अध्रुव संप्रणिधि अरू अर्थ, अरु भौमावयादि संयुत।।१६।।
श्रुत सर्वारथकल्पनीय है, ज्ञान अतीत भाविकालिक।
सिद्धि उपाध्यं ये चौदह, वस्तु अग्रायणि पूर्वकथित।।१७।।
इनमें पंचम वस्तु का, चौथा प्राभृत जो कहा जिनेश।
उसके हैं अनुयोग द्वार, चौबीस वरणे मैं नमूं हमेश।।१८।।
कृतिवेदन स्पर्शन कर्म अरु, प्रकृति कहें ये पांच तथा।
बंधन और निबंधन प्रक्रम, अनुपक्रम अभ्युदय कहा।।१९।।

सातमसातं दीर्घं, ह्रस्वं भवधारणीयसंज्ञं च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च, निधत्तमनिधत्तमभिनौमि।।२०।।
सनिकाचितमनिकाचितमथ कर्मस्थितिकपश्चिमश्कंधौ।
अल्पबहुत्वं च यजे, तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ।।२१।।
कोटीनां द्वादशशत-मष्टापंचाशतं सहस्राणाम् ।
लक्षत्र्यशीतिमेव च, पंच च वंदे श्रुतपदानि।।२२।।
षोडशशतं चतुस्त्रिंशत्कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि।
शतसंख्याष्टासप्तति-मष्टाशीतिं च पदवर्णान् ।।२३।।
सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वंदना प्रतिक्रमणं।
वैनयिकं कृतिकर्म च, पृथुदशवैकालिकं च तथा।।२४।।
वरमुत्तराध्ययनमपि, कल्पव्यवहारमेवमभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि, महाकल्पं पुण्डरीकं च ।।२५।।
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च, प्रकीर्णकान्यङ्गबाह्यानि।।२६।।

मोक्ष तथा संक्रम लेश्या, लेश्या के कर्म अरू परिणाम।
सातासात दीर्घ अरु ह्रस्वं, अरु भवधारणीय शुभ नाम।।२०।।
पुरु पुद्गलात्मक है तथा निधत्त, अनिधत्त निकाचित अनिकाचित।
कर्म स्थिति पश्चिमी स्कंध अरु, अल्पबहुत्व नमूं चौबीस।।२१।।
एक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पांच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूं, नमाकर माथ।।२२।।
सोलह सौ चौतीस करोड़, तेरासी लाख अरु सात सहस।
अठ सौ अठ्यासी इतने ये, पद के वर्ण कहे शाश्वत।।२३।।
सामायिक चउबिस तीर्थंकर, स्तुति वंदन औ प्रतीक्रमण।
वैनयिक कृतिकर्म तथा दश, वैकालिक का करूं नमन।।२४।।
श्रेष्ठ उत्तराध्ययन कल्प, व्यवहार कहा वंदूं उनको।
कल्पाकल्प महाकल्पं अरु, पुंडरीक वंदूं सबको।।२५।।
परिपाटी से नमूं महायुत, पुंडरीक श्रुत को नित ही।
अंग बाह्य ये कहे प्रकीर्णक, निपुण महाश्रुत पूज्य सही।।२६।।

पुद्गलमर्यादोक्तं, प्रत्यक्षं सप्रभेदमवधिं च।
देशावधिपरमावधि - सर्वावधिभेदमभिवन्दे ।।२७।।

परमनसि स्थितमर्थं, मनसा परिविद्य मंत्रिमहितगुणम्।
ऋजुविपुलमतिविकल्पं, स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ।।२८।।

क्षायिकमनन्तमेकं, त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम् ।
सकलसुखधाम सततं, वन्देऽहं केवलज्ञानम् ।।२९।।

एवमभिष्टुवतो मे, ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि, र्ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम् ।।३०।।

अंचलिका —**इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्मसुत्तपढमाणुओग-पुव्वगयचूलिया चेव[1] सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ,**

अवधिज्ञान मर्यादायुत, पुद्गल प्रत्यक्ष करे बहुविध।
देशावधि परमावधि सर्वावधि को वंदूं भेद सहित।।२७।।
पर मन में स्थित सब वस्तू, को प्रत्यक्ष करे जो ज्ञान।
ऋजुमति विपुलमति मनःपर्यय, उनको वंदू भव भय हान।।२८।।
केवलज्ञान त्रिकालिक सर्व, पदार्थ प्रकाशे युगपत ही।
क्षायिक एक अनंत सकल, सुखधाम उसे वंदूं नित ही।।२९।।
इस विध स्तुति करते मुझको, सकल लोकचक्षू सब ज्ञान।
ज्ञान ऋद्धि देवें झट ज्ञानों, का फल अच्युत सौख्य निधान।।३०।।

अंचलिका —

हे भगवन् ! श्रुतभक्ती, कायोत्सर्ग किया उसके हेतु।
आलोचन करना चाहूँ जो, अंगोपांग प्रकीर्णक श्रुत।।
प्राभृतकं परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग पूर्वादिगत।
पंच चूलिका सूत्र स्तव, स्तुति अरु धर्म कथादि सहित।।
सर्वकाल मैं अर्चूं पूजूं, वदूं नमूं भक्ति युत से।
ज्ञानफलं शुचि ज्ञान ऋद्धि, अव्यय सुख पाऊं झटिति से।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।

१. सुत्तत्थय ऐसा भी पाठ है।

कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अनंतर आगे के मंत्र स्थापना आदि को पढ़ते हुए मुनि के मस्तक पर लवंग या पीले पुष्प क्षेपण करते रहें—

प्रयोग विधि—

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

पुनः आगे लिखे मंत्र से मस्तक पर चंदन छिड़कें।

(इस मंत्र को ९ या २७ बार भी पढ़ सकते हैं)

यहाँ नवीन पिच्छी, कमण्डलु व शास्त्र भी देना चाहिए।

अनंतर—

अथ उपाध्यायपदस्थापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं शांतिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् 'सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि स्तव' पढ़कर पृ. ३४ से शांतिभक्ति पढ़ें)

अथ उपाध्यायपदनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्ति-श्रुतभक्ति-शांतिभक्तीः कृत्वा तद्हीनाधिक-दोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ३८ से समाधिभक्ति पढ़ें)

अनंतर नवीन बने उपाध्यायमुनि आचार्यभक्ति पढ़कर आचार्यदेव को नमस्कार करें।

पुनः दातागण— श्रावक आदि श्रीफल आदि चढ़ाकर उपाध्याय को नमस्कार करें, तब उपाध्यायगुरु भी सबको आशीर्वाद प्रदान करें।

।।यह उपाध्यायपददानविधि पूर्ण हुई।।

अथाचार्यपदस्थापन विधिः

सुमुहूर्ते दाता शान्तिकं गणधरवलयार्चनं च यथाशक्ति कारयेत्। ततः श्रीखंडादिना छटादिकं कृत्वा आचार्यपदयोग्यं मुनिमासयेत्। आचार्यपद-प्रतिष्ठापनक्रियायां इत्याद्युच्चार्य सिद्धाचार्यभक्ती पठेत्। ''ॐ ह्रूं परमसुरभि-द्रव्यसन्दर्भपरिमलगर्भतीर्थाम्बुसम्पूर्णसुवर्णकलशपंचकतोयेन परिषेचयामीति स्वाहा'' इति पठित्वा कलशपंचकतोयेन पादोपरि सेचयेत्। ततः पंडिताचार्यो ''निर्वेद सौष्ठ'' इत्यादि महर्षिस्तवनं पठन् पादौ समंतात्परामृश्य गुणारोपणं कुर्यात्। ततः ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट् आवाहनं स्थापनं सन्निधीकरणं। ततश्च ''ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं धर्माचार्याधिपतये नमः'' अनेन मंत्रेण सहेन्दुना चन्दनेन पादयोर्द्वयोस्तिलकं दद्यात्। ततः शान्तिसमाधिभक्ती कृत्वा गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्योपविशति। तत उपासकास्तस्य पादयोरष्टतयीमिष्टिं कुर्वन्ति। यतयश्च गुरुभक्तिं दत्वा प्रणमन्ति। स उपासकेभ्य आशीर्वादं दद्यात्।

जो चतुर्विध संघ में दीक्षा में, उम्र में व ज्ञान, चारित्र, तप आदि में प्रौढ़ हैं। आचार्यदेव के बाद पूर्णतया संघ को संभालने में सक्षम हैं अथवा आचार्यदेव के प्रथम—आदि शिष्य हैं। वे ही संघ के आचार्य बनने के लिए मान्य होते हैं। श्री कुंदकुंददेव द्वारा कथित मूलाचार ग्रंथ के अनुसार जिनमें सर्वगुण हैं उन्हें ही आचार्यदेव अपने हाथ से आचार्यपद देकर आप स्वयं सल्लेखना करने के सन्मुख होते हैं।

यहाँ यह ध्यान रखना है कि जब आचार्यदेव अपना आचार्यपद शिष्य को दे देते हैं तब वे शिष्य को आचार्य मानकर उनसे छोटे बनकर उन्हें नमस्कार करते हैं, ऐसा प्रथम आचार्यदेव चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी परम्परा में नहीं है क्योंकि आचार्यपद छोड़ने के बाद भी गुरु-गुरु ही रहते हैं, शिष्य को गुरु नहीं बनाते हैं।

प्रयोग विधि—

शुभ मुहूर्त में दाता—श्रावक शांति विधान और गणधरवलय विधान करावें। पुनः पांडाल में श्रीखंड-केशर आदि के छीटें देकर सौभाग्यवती महिलाओं से तंदुल से स्वस्तिक बनवाकर उस पर नूतन पाटा—लकड़ी का आसन जो कि आचार्यपद के योग्य है, उसे रखकर आचार्यपद के योग्य मुनि को बिठावें।

पुनः—

अथ आचार्यपदप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव, पढ़कर पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

पुनः—

अथ आचार्यपदप्रतिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि स्तव पढ़कर पृ. ५१ से आचार्यभक्ति पढ़ें।)

इससे पूर्व सामने एक चौकी पर नूतन—स्वर्ण या चाँदी के पाँच कलश स्थापित करा देवें, जिनमें सर्वौषधि, केशर, कर्पूर आदि द्रव्य डालकर शुद्ध प्रासुक—गर्म जल भरा देवें। इन कलशों से आगे लिखा मंत्र पढ़कर कोई विधानाचार्य विद्वान्—पंडित आचार्यपद के योग्य मुनि के चरणों का अभिषेक करावें। इसमें पाँच जोड़े—पति-पत्नी भी मिलकर पादाभिषेक कर सकते हैं।

प्रयोग विधि-मंत्र—

ॐ ह्रूँ परमसुरभिद्रव्यसंदर्भपरिमलगर्भतीर्थाम्बुसंपूर्णसुवर्णकलशपंचकतोयेन परिषेचयामीति स्वाहा।

अनंतर पंडिताचार्य "निर्वेदसौष्ठ....." आदि महर्षिस्तवन पढ़ते हुए उनके दोनों चरणों का स्पर्श करें। **अथवा**

जिनान् जिताराति-गणान् गरिष्ठान्, देशावधीन् सर्वपरावधींश्च।
सत्कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।१।।

संभिन्नश्रोत्रान्वित-सन्मुनीन्द्रान्, प्रत्येकसम्बोधित-बुद्धधर्मान्।
स्वयंप्रबुद्धांश्च विमुक्तिमार्गान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।२।।

द्विधा-मनःपर्ययचित्त-प्रयुक्तान्, द्विपंचसप्त-द्वयपूर्वसक्तान्।
अष्टाङ्गनैमित्तिक-शास्त्रदक्षान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।३।।

विकुर्वणाख्यार्द्धि महाप्रभावान्, विद्याधरां-श्चारणप्रर्द्धिप्राप्तान्।
प्रज्ञाश्रिताऽनित्यखगामिनश्च, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।४।।

आशीर्विषान् दृष्टिविषान्मुनीन्द्रा-नुग्रातिदीप्तोत्तम-तप्ततप्तान्।
महातिघोर-प्रतपःप्रसक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।५।।

वन्द्यान् सुरैर्घोरगुणांश्च लोके, पूज्यान् बुधैर्घोरपराक्रमांश्च।
घोरादिसंसद्-गुणब्रह्मयुक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।६।।

आमर्द्धिखेलर्द्धि-प्रजल्लविट्प्र-सर्वर्द्धिप्राप्तांश्च व्यथादिहंतॄन्।
मनोवचःकाय-बलोपयुक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।७।।

सत्क्षीरसर्पि-र्मधुरा-मृतर्द्धीन्, यतीन् वराक्षीण-महानसांश्च।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्-प्रपूज्यान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।८।।

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्, श्रीवर्द्धमानर्द्धि-विबुद्धिदक्षान्।
सर्वान् मुनीन् मुक्तीवरानृषीन्द्रान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै।।९।

नृसुर-खचरसेव्या विश्वश्रेष्ठर्द्धिभूषा।
विविधगुणसमुद्रा मारमातङ्गसिंहाः।
भवजलनिधिपोता वन्दिता मे दिशन्तु
मुनिगण-सकलान् श्रीसिद्धिदाः सदृषीन्द्रान्।।१०।।

यह महर्षिस्तवन — गणधरवलयमंत्र पढ़ते हुए आचार्यपद के योग्य ऐसे गुरु के दोनों चरणों को पूर्णरूप से स्पर्श करें।

पुनः आचार्यदेव नूतन आचार्य पद देते हुए उन मुनि के मस्तक पर गुणों का आरोपण करें।

प्रयोग विधि —

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

पुनः आगे लिखे मंत्र से मस्तक पर लवंग व पीले तंदुल क्षेपण करते हुए १०८ बार या २७ बार मंत्र पढ़ें।

ये मंत्र दो प्रकार के हैं — इनमें से कोई एक मंत्र से लवंग क्षेपण करें — ये आचार्य वाचना मंत्र या आचार्य मंत्र कहे गये हैं —

(१) ॐ ह्रां ह्रीं श्रीं अर्हं हं सः आचार्याय नमः।

(२) ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं हं सः आचार्याय नमः।

अनंतर चंदन से नूतन आचार्य के दोनों चरणों में पंडिताचार्य आगे का मंत्र पढ़ते हुए तिलक लगावें।

मंत्र —

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं धर्माचार्याधिपतये नमः।

इसके बाद आचार्यदेव नूतन आचार्य को नूतन पिच्छी, शास्त्र व कमण्डलु प्रदान करें तथा पुरानी पिच्छी व कमण्डलु जिन्हें दातार बनाया है उन्हें दे देवें। यहाँ ध्यान रखें कि कदाचित् पिच्छी-कमण्डलु आदि देने के लिए बोली हुई है या कोई दातार निर्धारित किये हैं तो भी उनके हाथ से आचार्यदेव पिच्छी आदि स्वयं लेकर प्रथम बार देवें, दातार से न दिलावें।

इसके बाद आचार्य शांतिभक्ति व समाधिभक्ति पढ़ें —

अथ आचार्यपदनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ.३४ से शांतिभक्ति पढ़ें)

अनंतर —

अथ आचार्यपदनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धाचार्यशांतिभक्तीः कृत्वा तद्हीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य व थोस्सामिस्तव पढ़कर पृ. ३८ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

इसके बाद वे नूतन आचार्य अपने चौक से उठकर अपने आसन पर विराज गये आचार्यदेव की स्वयं गवासन से बैठकर लघुसिद्ध, श्रुत व आचार्य ऐसी तीन भक्ति पढ़कर गुरुवंदना करें-

अथ आचार्यवन्दनायां.....सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्। (९ जाप्य)

लघु सिद्धभक्ति

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरितसिद्धे य।
णाणम्हि दंसणम्हि य सिद्धे सिरसा णमंसामि।।

इच्छामि भंत्ते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ

बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अथ आचार्यवन्दनायां.....श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं। (९ जाप्य)

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।१।।

अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण - महोवहिं सिरसा।।२।।

पुनः गवासन से बैठकर अंचलिका पढ़ें-

अंचलिका—**इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडय-परियम्मसुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थयथुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।**

नमोस्तु आचार्यवंदनायां.....आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

लघु आचार्यभक्ति

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।।१।।

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वंदे।।२।।

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।।३।।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्निहोत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः।।४।।

गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।।५।।

अंचलिका—**इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं**

अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

पुनः तीन भक्ति पढ़कर आचार्यदेव को दोनों हाथों में पिच्छिका लिए हुए विनय से नमोऽस्तु करें। तब आचार्यदेव भी नूतन आचार्य को पिच्छी लेकर 'नमोऽस्तु' करें यह 'प्रतिनमोऽस्तु'—प्रतिवंदना की विधि है।

यदि आचार्यदेव ने नूतन आचार्य बनाकर अपना आचार्यपद त्याग कर दिया है तो भी वे भूतपूर्व आचार्य ही रहेंगे। उनकी वंदना लघु सिद्ध, श्रुत, आचार्य ऐसी तीन भक्तिपूर्वक ही करना है।

नूतन आचार्य इन अपने आचार्यपदप्रदाता गुरु को गुरु ही मानेंगे, ऐसी प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा है।

।।यह आचार्यपद दानविधि पूर्ण हुई।।

क्षुल्लक दीक्षा विधिः

अथ लघुदीक्षायां सिद्ध-योगि-शान्ति-समाधिभक्तीः पठेत्। ''ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः'' अनेन मंत्रेण जाप्यं वार २१ अथवा १०८ दीयते।

अन्यच्च विस्तारेण लघुदीक्षाविधिः — **अथ लघुदीक्षानेतृजनः पुरुषः स्त्री वा दाता संस्थापयति। यथा-योग्यमलंकृतं कृत्वा चैत्यालये समानयेत्, देवं वंदित्वा सर्वैः सह क्षमां कृत्वा गुरोरग्रे च दीक्षां याचयित्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्रीविहित-स्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वाभिमुखः पर्यंकासनो गुरुश्चोत्तराभिमुखः संघाष्टकं संघं च परिपृच्छ्य लोचं।**

लघु दीक्षा — क्षुल्लक दीक्षा में सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शांतिभक्ति और समाधिभक्ति पढ़ें।

ॐ ह्रीं.....आदि मंत्र से २१ बार या १०८ बार जाप्य करें।

इस क्षुल्लक दीक्षा विधि को विस्तार से कहते हैं —

क्षुल्लक दीक्षा दिलाने वाले पुरुष अथवा स्त्री दाता सभी क्रिया कराते हैं। पूर्व के समान गणधरवलय आदि विधान कराके यथायोग्य अलंकार से अलंकृत कर चैत्यालय-मंदिर में लावें।

अर्हंतदेव की वंदना करके सभी के साथ क्षमायाचना करके गुरु के सामने दीक्षा की याचना करके उनकी आज्ञा से सौभाग्यवती स्त्री के द्वारा बनाये गये स्वस्तिक के ऊपर श्वेतवस्त्र प्रच्छादित कर उस पर पूर्वमुख करके पर्यंकासन से बैठे, गुरु उत्तरमुख करके बैठकर चतुर्विध संघ को पूछकर मुनिदीक्षा में कही गई विधि के अनुसार सिद्धभक्ति, योगिभक्ति पढ़ें।

क्षुल्लक दीक्षा के समय केशलोंच करना आवश्यक नहीं है अतः नाई से बाल बनवा लें या कैंची से निकाल दें तथा बीच में व चारों तरफ थोड़े-थोड़े बाल शेष रखें, दीक्षा देते समय आचार्यदेव सर्वप्रथम केशलोंच क्रिया करते हैं उस समय मंत्रपूर्वक पाँच स्थान के केशों का लोच करते हैं।

यहाँ भी पहले दीक्षार्थी श्रावक या ब्रह्मचारी से पांडाल में जिनेन्द्र प्रतिमा का पंचामृत अभिषेक कराना चाहिए।

प्रयोग विधि —

अथ क्षुल्लकदीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(णमोकार मंत्र, चत्तारि मंगल, अड्ढाइज्जदीव आदि सामायिक दण्डक पढ़कर, नव बार णमोकार मंत्र जपकर, थोस्सामि स्तव पढ़कर सिद्धानुद्भूत.....पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें।

पुनः —

अथ क्षुल्लकदीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिक दण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर जातिजरोरुरोग..... पृ. ३२ से योगिभक्ति पढ़ें।)

पुनः शांतिमंत्र पढ़कर मस्तक पर तीन बार गंधोदक छिड़कें।

''ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमतेप्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वपापप्रणाशनाय सर्वविघ्नविनाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपर-कृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।''

पुनः पृ. १० से वर्धमानमंत्र पढ़कर पवित्र भस्म लेकर **''ॐ णमो अरिहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकृतोत्तमांगाय ज्योतिर्मयाय मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानाय अ सि आ उ सा स्वाहा।''**

यह मंत्र पढ़कर दीक्षार्थी के मस्तक पर भस्म डालकर **''ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उसा स्वाहा''** मंत्र पढ़कर मस्तक के बीच का एक बार केशलोंच करें अर्थात् एक बार केश उखाड़ें।

पुनः **'ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः'** मंत्र बोलकर बीच के मस्तक के केश निकालें।

पुनः **'ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः'** मंत्र बोलकर शिर के आगे के केश निकालें।

पुनः **'ॐ ह्रूँ सूरिभ्यो नमः'** मंत्र पढ़कर आचार्यदेव ही स्वयं दीक्षार्थी के मस्तक के दायें तरफ के केश उखाड़ें।

पुनः **'ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः'** मंत्र बोलकर मस्तक के पीछे के केश उखाड़ें।

पुनः **'ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः'** मंत्र बोलकर गुरु दीक्षार्थी के मस्तक के बायीं तरफ के केश उखाड़ें।

यह पाँच स्थानों की मंत्र पढ़कर-केशलोंच क्रिया दीक्षागुरु आचार्य स्वयं अपने हाथ से करें। अनंतर यदि पहले केशलोंच या केश नहीं निकाले हैं तो दूसरे साधु या श्रावक पूरा केशलोंच कर देवें। पुनः —

अथ क्षुल्लकदीक्षायां लोचनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-

कर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक ९ जाप्य, थोस्सामि स्तव पढ़कर पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें।)

इसके बाद गुरू गर्म जल से शिष्य का मस्तक धो देवें, पुनः शिष्य गुरुभक्ति पढ़कर गुरु को नमस्कार करें।

अनंतर शिष्य—दीक्षार्थी उसी मंगल चौक पर ही खड़े होकर अपने वस्त्र, आभरण, यज्ञोपवीत आदि उतारकर उसी चौक पर खड़े ही रहकर गुरु से दीक्षा की याचना करें।

इसके बाद गुरु की स्वीकृति प्राप्त कर शिष्य उसी चौक पर पद्मासन से बैठ जावे।

गुरु शिष्य के मस्तक पर श्रीकार लिखें। अनंतर "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः' मंत्र से पढ़-पढ़कर २१ बार या १०८ बार शिर पर लवंग या पीले पुष्प क्षेपण करते जावें।

अनंतर—

गुरु दीक्षार्थी के हाथ की अंजुलि बनवाकर उसमें केशर-कर्पूर श्रीखंड से श्रीकार-श्रीः लिखें व उस श्रीः के चारों तरफ—

रयणत्तयं च वंदे, चउवीसजिणं तहा वंदे।
पंचगुरूणं वंदे, चारणजुगलं तहा वंदे।।

गाथा पढ़कर सामने ३ का अंक लिखें, दाहिनी तरफ २४, पीछे ५ एवं बायीं तरफ २ का अंक लिखें। पुनः—

'**सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः।**' मंत्र पढ़कर धुले तंदुल अंजली में भरकर ऊपर में नारियल व सुपाड़ी रख देवें और दो भक्ति पढ़कर व्रत देवें-

प्रयोग विधि—

अथ क्षुल्लकदीक्षायां व्रतदानक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् लघुदण्डक, ९ जाप्य व थोस्सामि पढ़कर पृ. २८ से सिद्धभक्ति पढ़ें) पुनः

अथ क्षुल्लक दीक्षायां व्रतदानक्रियायां योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृ.३२ से योगिभक्ति पढ़ें।) पुनः—

दंसणवयसामाइय-पोसहसचित्तराइभत्ते य।
बंभारंभपरिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदे दे।।

यह गाथा पढ़कर ११ प्रतिमा का संक्षिप्त लक्षण बतलाकर आगे लिखा पाठ पढ़कर ११ प्रतिमा के व्रत देवें—

''अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं ते भवदु।'

इस पाठ को तीन बार बोलकर ११ प्रतिमा के व्रत प्रदान करें। पुनः शांतिभक्ति पढ़ें।

अथ क्षुल्लकदीक्षायां व्रतदानक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शांतिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि करके पृ. ३४ से शांतिभक्ति पढ़ें।)

अनंतर—

श्रीशांतिरस्तु शिवमस्तु जयोऽस्तु नित्य-
मारोग्यमस्तु तव पुष्टिसमृद्धिरस्तु।।
कल्याणमस्त्वभिमतस्तव वृद्धिरस्तु।
दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रधनं सदास्तु।।

यह आशीर्वाद श्लोक पढ़कर दाता या यजमान या लोकव्यवहार में जिन्हें माता-पिता बनाया है, उन्हें यह दीक्षार्थी के हाथ के नारियल, सुपाड़ी, तंदुल आदि सामान दिला देवें।

गुर्वावली—"अथाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशे.....प्रदेशे..... नगरे.....ग्रामे.....तीर्थक्षेत्रे श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सरे २५३५ तमे..... मासोत्तममासे.....पक्षे.....तिथौ.....वासरे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुंदकुंदाचार्यपरंपरायां प्रथमाचार्यश्रीशांतिसागरस्तस्य पट्टाचार्यः श्रीवीरसागरस्तस्य पट्टाचार्यः तस्य शिष्योऽहं..... इत्यादि रूप से अपनी-अपनी गुर्वावली बोलें। मम अमुकनामधेयस्त्वं शिष्योऽसि।"

पुनः गुरु अपने हाथ से ही क्षुल्लक को पिच्छी, शास्त्र, कमण्डलु देवें। यदि बोली होकर या पहले से निर्धारित हों जो पिच्छी, शास्त्र, कमण्डलु देने वाले हों, वे गुरु के हाथ में ही देवें। दीक्षादाता गुरु ही सर्वप्रथम शिष्य को पिच्छी, शास्त्र, कमण्डलु देते हैं। अनंतर क्षुल्लक को कभी भी पिच्छी परिवर्तन आदि के समय कोई भी श्रावक दे सकते हैं व उनके हाथ की पुरानी पिच्छी ले लेते हैं। यह बात बहुत ही ध्यान देने की है कि प्रथम पिच्छी, शास्त्र व कमण्डलु गुरु ही देते हैं।

पिच्छी देने का मंत्र—

ॐ णमो अरहंताणं भोः क्षुल्लक! (आर्य!, ऐलक! या क्षुल्लिके![१])

---

१. क्षुल्लक दीक्षा में क्षुल्लक! कहें। ऐलक दीक्षा में भोः आर्य! या भोः ऐलक! कहें। क्षुल्लिका दीक्षा में भोः क्षुल्लिके! कहें।

षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

ऐसा बोलकर गुरु शिष्य को दोनों हाथों में पिच्छिका देवें।

पुनः ग्रंथ प्रदान करें—

ॐ णमो अरहंताणं भोः क्षुल्लक! मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय द्वादशांगश्रुताय नमः। इदं ज्ञानोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

पुनः बाएं हाथ से गुरु शिष्य को कमण्डलु देवें—

ॐ णमो अरहंताणं भोः क्षुल्लक! रत्नत्रयपवित्रीकरणांगाय बाह्याभ्यंतरमल-शुद्धाय नमः, इदं शौचोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

इसके बाद समाधिभक्ति पढ़ें—

अथ क्षुल्लकदीक्षाक्रियानिष्ठापनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्त्यादिकं कृत्वा तद्धीनाधिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(पूर्ववत् सामायिकदण्डक, ९ जाप्य, थोस्सामि पढ़कर पृ. ३८ से समाधिभक्ति पढ़ें।)

अनंतर नवदीक्षित क्षुल्लक दीक्षा चौक से उठकर पहले पिच्छी लेकर गवासन से बैठकर आचार्यदेव—दीक्षागुरु को नमोऽस्तु करें पुनः सभी मुनि-आर्यिका आदि को यथायोग्य नमोऽस्तु, वंदामि करके क्षुल्लकों को इच्छामि करें।

इसके बाद अगले दिन आहार से पूर्व जैसे मुनिदीक्षा में मुखशुद्धि बताई गई है उसी विधि से आचार्य मुखशुद्धि कराकर आहार करावें।

अनंतर उसी पक्ष या अगले पक्ष में व्रतारोपिणी क्रिया में 'श्री गौतम गणधर देवकृत' श्रावक प्रतिक्रमण पढ़कर व्रतारोपण विधि करके नवदीक्षित क्षुल्लक को कोई न कोई बृहत्पल्य या जिनगुणसंपत्ति आदि व्रत देवें।

प्रशस्तिः

मंगलं पार्श्वनाथोऽर्हन्, पितरौ तस्य मंगलम्।
मंगलं गर्भकल्याणं, वाराणसी च मंगलम्।।१।।

शासनं वीरनाथस्य, वर्तते भुवि सांप्रतम्।
गौतमादिमहर्षीणा-मनुवीचिपरंपरा।।२।।

तस्यां च मूलसंघेऽस्मिन्, कुंदकुंदान्वयो महान्।
बलात्कारगणः ख्यातः, शारदागच्छ इत्यपि।।३।।

एतस्यां मणिमालायां, प्रथमाचार्यविश्रुतः।
श्रीशान्तिसागराख्योऽसौ, चारित्रचक्रभृद् महान्।।४।।

तस्य पट्टाधिपोऽप्याद्यः, गुरुः श्रीवीरसागरः।
यस्माज्ज्ञानमती जाता, ह्यल्पज्ञाहं किलार्यिका।।५।।

नवत्रिपंचद्वयंकेऽब्दे[१], वैशाखेऽसितपक्षके।
दीक्षाविधेर्द्वितीयायां-मनुवादः प्रपूर्यते।।६।।

अर्हन्मुद्रांकिता यावद्, यावत्संघश्चतुर्विधः।
तावद् दीक्षाविधिर्ग्रंथो, दीक्षां भव्याय दीयताम्।।७।।

यावन्मुक्तिर्न मे तावत्, जैनीदीक्षा भवे भवे।
जैनी वाणी हृदि स्थेयात्, जिने भक्तिः स्थिरा भवेत्।।८।।

१. वीर निर्वाण संवत् २५३९, ईसवी सन् २०१३।